शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 16 अंक 91 (मूल क्रमांक 148)
सितम्बर-अक्टूबर 2023 मूल्य: ₹ 50.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सह सम्पादक
पारुल सोनी

सहायक सम्पादक
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सहयोग
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण
राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग
हरिओम
कमलेश यादव

शैक्षणिक
संदर्भ

वर्ष: 16 अंक 91 (मूल क्रमांक 148)
सितम्बर-अक्टूबर 2023

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	8000.00

मुखपृष्ठ: पश्चिमी भारत और दक्षिणी पाकिस्तान के तटों की ओर बढ़ते बिपरजॉय तूफान की तस्वीर, जिसे 11 जून, 2023 को इंटरनेशनल स्पेस स्टेशन से एक एस्ट्रोनॉट ने खींची थी। बांग्ला के शब्द 'बिपरजॉय' का अर्थ है 'विपदा'। तूफान के लिए यह नाम बांग्लादेश ने सुझाया था। इस तरह तूफानों के नाम कैसे रखे जाते हैं, पढ़िए पृष्ठ 82 पर।

पिछला आवरण: ब्रुनफेल्सिया पासीफ्लोरा फूलों का चित्र, जिन्हें 'टुडे टुमॉरो टुगेदर' भी कहा जाता है। कितना काव्यात्मक है! इस चित्र में फूलों के रंग देखकर आप बता सकते हैं कि उनकी उम्र क्या है। जानिए कैसे, पृष्ठ 86 पर।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : Cover 1 - https://eoimages.gsfc.nasa.gov/images/imagerecords/151000/151463/ISS069-E-20036_lrg.jpg
Cover 3 - https://www.nature.com/articles/srep24408/figures/1
Cover 4 - https://homemakr.org/2022/04/16/yesterday-today-and-tomorrow-plant-care-and-propagation/

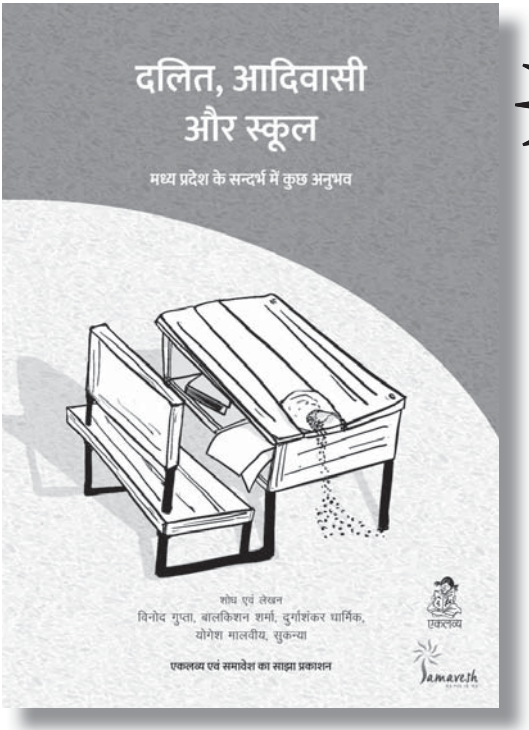

हमारा आगामी प्रकाशन

दलित, आदिवासी और स्कूल

ज़मीनी शोध पर आधारित यह किताब दलित और आदिवासी विद्यार्थियों के स्कूली अनुभवों को प्रस्तुत करती है। साथ ही, दलित और आदिवासी बच्चों की शिक्षा से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण सवालों को उठाती है।

यह किताब उन सभी शिक्षकों, शोधकर्ताओं और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है जो शिक्षा और जाति से जुड़े ज़रूरी सवालों से इत्तिफाक रखते हैं।

एकलव्य

ऑर्डर करने के लिए सम्पर्क करें:
फोनः +91 755 297 7770-71-72 pitara@eklavya.in
वेबसाइटः www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

लोकतंत्र एवं वैज्ञानिक मानसिकता

क्या है वैज्ञानिक मानसिकता? एक लोकतांत्रिक समाज में इसका होना क्यों ज़रूरी माना जाता है? इसके साथ ही, क्यों इसे लगातार सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक लालचों के चलते प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है? जहाँ एक ओर वैज्ञानिक मानसिकता सामाजिक खामियों को दूर करने में मदद करती है, वहीं दूसरी ओर, इसे धार्मिक-विश्वास विरोधी बताकर इसका मखौल उड़ाया जाता है। तो क्या वैज्ञानिक मानसिकता की हार लोकतंत्र के मूल्यों की हार का रास्ता तय करती है? हृदयकान्त दीवान का यह लेख भारतीय सन्दर्भ में इससे जुड़े प्रसंगों की गहरी तहकीकात और व्याख्या करता है। यह एक ज्वलन्त मुद्दा है जिस पर विचार-विमर्श करना बेहद ज़रूरी है।

29

पढ़ना ज़रा ठहरना... ठहरना ज़रा सोचना!

आप यह पढ़ पा रहे हैं। मगर क्या आप पढ़ते हैं? पढ़ते भी हैं तो क्या पढ़े पर सोचते हैं? डिजिटल दुनिया की आपाधापी और 'पढ़ाई' के निर्मम माहौल के चलते ठहरकर, समझकर पढ़ना दूभर हो चला है। क्या पढ़ने-सोचने की आदत का अभाव शिक्षा प्रणाली में जड़ें लेता है? क्या शिक्षा प्रणाली की साधनवादी सोच के दायरे पढ़ने के, पढ़कर समझने के सुख और आनन्द को भी सीमित करते हैं? ऐसे में, साहित्य का उद्देश्य क्या है? अनिल सिंह अपनी इस पुस्तक समीक्षा में बड़ी पेचीदगी से यह बताते हैं कि किस तरह कृष्ण कुमार अपनी किताब *पढ़ना, ज़रा सोचना* के ज़रिए ऐसे सवालों पर 'आपसी बात' करते हैं। ज़रा ठहरकर पढ़िए, और सोचिए...

57

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-91 (मूल अंक-148), सितम्बर-अक्टूबर 2023

इस अंक में

07 | स्पूतनिक की उड़ान और विज्ञान शिक्षण
कालू राम शर्मा

13 | आकाशीय पिण्डों की गति की व्याख्या: भाग 2
उमा सुधीर

22 | भाप की कथा
हरिशंकर परसाई

29 | लोकतंत्र एवं वैज्ञानिक मानसिकता
हृदयकान्त दीवान

43 | पढ़ना सीखने के दौरान सटीक अनुमान लगाने का महत्व...
मीनू पालीवाल

51 | अध्यापक नहीं, सहायक - एक अनुभव
रेनू उपाध्याय

57 | पढ़ना ज़रा ठहरना... ठहरना ज़रा सोचना
अनिल सिंह

64 | पेगी मोहन के लेख पर टिप्पणियाँ
टी. विजयेन्द्र

67 | वापसी: भाग 1 (विज्ञान कथा)
सतीश बलराम अग्निहोत्री

82 | समुद्र में आने वाले तूफानों का नामकरण कैसे होता है?
सवालीराम

86 | रंगून क्रीपर तथा कल, आज और कल के रंग बदलते...
किशोर पंवार

आपने लिखा

संदर्भ अंक 146, मई-जून 2023 के दो लेखों ने मेरा ध्यान कुछ ज़्यादा ही आकृष्ट किया। पहला, हरिशंकर परसाई का *यूरेका! यूरेका!* और दूसरा, कालूराम शर्मा का *बीती ताहि ध्यान रख।*

हरिशंकर परसाई का पुस्तक-अंश पढ़कर उत्प्लावन सम्बन्धी प्रयोग के अलावा आर्कमिडीज़ के द्वारा की गई अन्य खोजों के बारे में भी विस्तृत और मज़ेदार जानकारी मिली कि कैसे एक वैज्ञानिक दुश्मन की सेना से दो-दो हाथ करने में अपनी शानदार खोजों द्वारा किसी राजा का सहायक बन सकता है।

बीती ताहि बिसार दे का मास्साब द्वारा बदला हुआ रूप, 'बीती ताहि ध्यान रख' बहुत ही गज़ब बात है। इसमें विज्ञान का गहरा स्वरूप छिपा हुआ है। विज्ञान की प्रकृति को समझने के लिए बीती ताहि बिसारना नहीं, याद रखना पड़ती है। दिवंगत कालूराम शर्मा को इसके लिए बधाई देना होगी। उन्होंने विज्ञान की प्रकृति एवं क्रियाकलापों को बहुत ही अच्छी तरह से समझा है और बहुत सही व सरल तरीके से उसे मास्साब और विद्यार्थियों के माध्यम से विस्तार से पेश भी किया है। *खोजबीन का आनन्द* उसी का एक विलक्षण उदाहरण है।

इस लेख में एक छोटा-सा शीर्षक है, 'छूना नहीं' जिसमें लिखा है कि अंकुरण के प्रयोग में जब बीज उग आए तो बच्चे उन्हें न छू रहे थे, और न सीधी उँगली से उस ओर इशारा कर रहे थे। वे अपनी तर्जनी उँगली को अपनी ओर मोड़कर पौधे की ओर इशारा कर रहे थे। इस पर मास्साब द्वारा बच्चों से सवाल पूछने पर बच्चों ने कहा कि उँगली दिखाने से पौधे मर जाते हैं। मास्साब ने प्रश्न तो पूछ लिया पर उन्हें भी नहीं पता था कि ऐसा क्यों करते हैं। समाज में ऐसा होता होगा और बच्चों ने भी वहीं से सीखा होगा और देखा-देखी करने लगे, यह सोचकर वे भी चुप हो गए।

लेख में बेल पर नर फूल को उँगली दिखाने की भी बात आई है। यह तो हम जानते ही हैं कि फल हमेशा मादा फूल से ही बनता है, परन्तु फूल से फल बनने की प्रक्रिया में नर फूलों की भूमिका भी जानी-पहचानी है। मादा फूलों का निषेचन होने के लिए नर फूलों में बने परागकण भी तो उतने ही ज़रूरी होते हैं।

मेरे ज़हन में भी यह सवाल पहले से गूँज रहा था कि तर्जनी उँगली क्यों नहीं दिखाना। यह पुस्तक-अंश पढ़कर मैंने इस प्रश्न पर एक बार फिर गौर किया कि उँगली दिखाने से फूल के मुरझाने का क्या सम्बन्ध है। यह बात समाज में कहीं-न-कहीं से तो आई है और इसका स्रोत भी यहीं होना चाहिए। इधर-उधर ढूँढ़ने पर पता चला कि ऐसा ही एक प्रसंग तुलसीकृत *रामचरितमानस* के बालकाण्ड में आया है जहाँ राम, लक्ष्मण और परशुराम का आपसी संवाद हो रहा है। धनुष तोड़ने के बाद परशुराम पूछते हैं, "शिव का धनुष किसने तोड़ा?" तब

राम कहते हैं, "शिव का धनुष तोड़ने वाला आप ही का कोई दास होगा। क्या आज्ञा है, आप मुझसे क्यों नहीं कहते?"

यह सुनकर परशुराम क्रोधित हो जाते हैं। इस पर लक्ष्मण कहते हैं कि "हमने लड़कपन में तो बहुत सारे धनुहीया तोड़े हैं किन्तु आपने तब तो ऐसा क्रोध नहीं किया! इस धनुष में ऐसा क्या खास है?" तब परशुराम कहते हैं, "अरे बालक! मेरा फरसा बड़ा ही भयानक है, यह गर्भ के बच्चों का भी नाश कर देता है।" तब लक्ष्मण हँसकर उनसे कहते हैं, "अरे मुनीश्वर, आप स्वयं को बड़ा योद्धा समझते हैं, बात-बात पर मुझे अपनी कुल्हाड़ी दिखाते हैं। फूँक से पहाड़ उड़ाना चाहते हैं...

यहाँ कोऊ कुम्हड़ बतिया नाही,
जो तर्जनी देखी मरी जाहिं।
देखी कुठार सरासर बाना,
में कछु कहा सहित अभिमाना।।"

सामाजिक दृष्टिकोण से देखें तो तर्जनी उँगली दिखाना यूँ भी अच्छा नहीं माना जाता। किसी को भी तर्जनी उँगली दिखाने का अर्थ होता है, उसे डराना, धमकाना या उसका अपमान करना। अतः इसी कारण समाज में फूलों को सीधी तर्जनी उँगली न दिखाने का प्रचलन होगा। इसी बात का ज़िक्र सोलहवीं सदी में रचित *रामचरितमानस* में भी है जो लगभग 400 साल पुराना एक लोकप्रिय, धार्मिक एवं सामाजिक ग्रन्थ है।

कुम्हड़ बतिया अर्थात् कद्दू की कलियाँ। अधिकांश कुकर बिट्स (कद्दू कुल) में एक ही बेल पर नर और मादा, दोनों फूल खिलते हैं। पहले नर और बाद में मादा फूल आते हैं। मोटे तौर पर 20 नर फूलों पर एक मादा फूल बनता है। और वह भी फल में परिवर्तित होगा या नहीं, यह बहुत सारे पर्यावरणीय कारकों पर निर्भर करता है। ढेर सारे नर फूल रोज़ खिलते हैं और शाम होते-होते खिर जाते हैं और मादा फूल लगभग चार-पाँच दिन के बाद ही खिलते हैं, पत्तियों की कोख में, वह भी एक-एक कर।

जिनका परागण हो जाता है, वे तो बचे रहते हैं और फल बन जाते हैं, चाहे उँगली दिखाई जाए या न दिखाई जाए। और जिनका परागण नहीं होता, वे खिर जाते हैं।

वैसे नर और मादा फूलों में भेद करना आम इन्सान के लिए आसान नहीं होता। अतः फूलों के खिलने की संख्या एवं फल बनने का अन्तर देखकर, यह धारणा बनी होगी कि तर्जनी उँगली दिखाने से फूल खिर जाते हैं।

किशोर पंवार
शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय
इन्दौर से सेवानिवृत्त
इन्दौर, म.प्र.

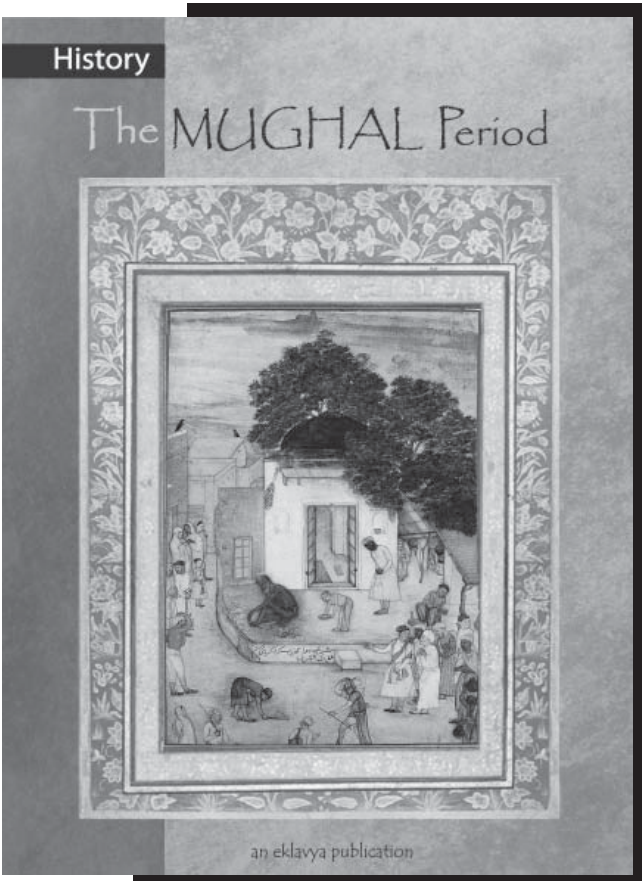

Engaging stories

Beautiful illustrations

Questions to reflect upon

Reproductions of miniature paintings

Price: ₹ 150

The MUGHAL Period

This module on the Mughal period in the history of India will satisfy your curiosity about how the rulers and the common people lived during those times. It will liven up any history classroom and also invoke a desire in you to learn more.

एकलव्य

To place the order -
Phone: +91 755 297 7770-71-72; Email: pitara@eklavya.in
www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

स्पूतनिक की उड़ान और विज्ञान शिक्षण

कालूराम शर्मा

शिक्षक प्रशिक्षण का सत्र खत्म होने के बाद दोपहर में सामूहिक भोजन और फिर गपशप के साथ एक हल्की-सी नींद। आखिर गर्मी की तपन में शिक्षक जाएँ भी तो कहाँ। शाम को शिक्षकों और स्रोत दल के लिए पुस्तकालय और अन्य सार्थक गतिविधियों का आयोजन तो होता ही है। कुछ शिक्षक और स्रोत दल के लोग शाम के वक्त घूमने का आनन्द लेते दिख जाते हैं। कभी-कभार शाम को कुछ लोग अपने पसन्दीदा सिनेमा देखने का लुत्फ उठाते भी नज़र आते हैं।

मास्साब ने सिनेमा की टिकट हाथ में थामे अपने साथ आए स्रोत सदस्य से पूछा, "आखिर ये होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण की शुरुआत कैसे हुई होगी? इसके पीछे कौन-सी सोच रही होगी?" मास्साब बहुत ही हल्के-फुल्के मूड में थे। स्रोत सदस्य दाढ़ी के अन्दर ही मुस्करा रहे थे। पीछे से मास्साब के दोनों कन्धों को ज़ोर-से दबाते हुए कहने लगे, "सवाल

दिलचस्प है आपका। चलो, अभी तो फिल्म देखते हैं! फिर होस्टल में चलकर बात करेंगे।"

देर रात को जब फिल्म देखकर आए तो विज्ञान शिक्षण के इतिहास पर चर्चा ने ज़ोर पकड़ा। स्रोत दल के सदस्य और शिक्षक होस्टल की छत पर अँधेरी-तारोंभरी रात में विज्ञान शिक्षण के इतिहास पर गपियाने लगे। स्रोत सदस्य ने अपनी बात को कहानीनुमा अन्दाज़ में कुछ यों पिरोया।

कहानी होविशिका की

"वास्तव में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण की शुरुआत की कहानी बड़ी ही दिलचस्प है। असल में, बात कुछ यूँ है कि बीसवीं सदी के मध्य (अक्टूबर 1959) में सोवियत संघ ने स्पूतनिक छोड़ा था। ज़ाहिर है, इस मानव निर्मित वस्तु को पृथ्वी के चक्कर लगाते, बीप-बीप-बीप करते देखना रोमांचक था। अन्तरिक्ष विज्ञान में यह एक अभूतपूर्व और चौकाने वाली घटना थी जिसका सारी दुनिया और स्कूली विज्ञान शिक्षण पर गहरा असर पड़ा। सोवियत संघ द्वारा स्पूतनिक का प्रक्षेपण संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए एक करारा झटका था। इसके चलते अमेरिका में यह बहस छिड़ गई कि हो-न-हो, यहाँ की विज्ञान शिक्षा में कुछ दिक्कत है, समस्या है जिसकी वजह से हमारे यहाँ अच्छे वैज्ञानिक तैयार नहीं हो पा रहे हैं। इस वजह से उस दौर में अमेरिका में स्कूली विज्ञान शिक्षण के कई प्रोजेक्ट प्रारम्भ हुए। हालाँकि, यह दीगर बात है कि कुछ साल बाद अमेरिका द्वारा अन्तरिक्षयान के प्रक्षेपण के बाद इनमें वह जोश नहीं रहा और सरकारी मदद भी कम होती गई। अमेरिका में सबसे बड़ी चिन्ता यह थी कि बच्चे विज्ञान शिक्षण से विमुख हो रहे हैं। इस चिन्ता के चलते वहाँ जो प्रमुख प्रयास हुए, उनमें सबसे अहम यह था कि विज्ञान शिक्षण में 'विज्ञान के अपने तरीके' का गहन प्रशिक्षण शामिल होना चाहिए और बच्चों को स्कूलों में एक वैज्ञानिक की तरह काम करना चाहिए।

उस दौरान हार्वर्ड फिज़िक्स प्रोजेक्ट, दी स्कॉटिश स्कूल प्रोग्राम और इंग्लैंड में नफील्ड प्रोजेक्ट शुरू किए गए थे। हालाँकि, ये कार्यक्रम एक-दूसरे से काफी अलग थे मगर इन सबमें एक साझा पहलू यह था कि ज़ोर तथ्यों और आँकड़ों पर महारत हासिल करने की बजाय विषय की संरचना सीखने-सिखाने पर हो। ज़ोर विज्ञान के परिणामों की बजाय, विज्ञान की प्रक्रिया पर था और कोशिश थी कि मात्र रट भर लेने की बजाय छानबीन और प्रयोगों को विज्ञान शिक्षण में शामिल किया जाए। कक्षा में शिक्षक भाषण की बजाय बच्चों को प्रयोग करने और खोजबीन करने के अवसर दें।

हालाँकि, इन कार्यक्रमों में बच्चों का अपने परिवेश और अनुभवों को शामिल करना लगभग नज़रअन्दाज़ किया गया था। साथ ही, बच्चे किस स्तर की अमूर्त सोच के लिए तैयार हैं, इस बात का महत्व इनमें शामिल नहीं था। एक और बात गौरतलब है – जो बात हम करते हैं कि विद्यार्थियों को स्कूली विज्ञान शिक्षण के तहत वह ज्ञान और हुनर हासिल हों जो उन्हें अपने परिवेश में विचारशील जीवन जीने में मददगार हों।

वैसे हमारे यहाँ विज्ञान सहित अन्य विषयों में भी जो सीखा जाता है, वह ग्रहीत ज्ञान (रिसीव्ड नॉलेज) के रूप में सीखा जाता है। विज्ञान की बात करें तो आज भी विज्ञान को तथ्यों, सूत्रों और परिभाषाओं सहित भारी-भरकम पुलिन्दे के रूप में बच्चों को परोसा जाता है। विज्ञान के पाठ्यक्रम में हर सवाल का जवाब खोजने देने की बजाय उसका पका-पकाया हल बच्चों को कण्ठस्थ करने को दिया जाता है। इसलिए आम तौर पर बच्चों के लिए प्रयोग करने, खोजबीन में शामिल होने और चर्चा करने का कोई स्थान ही नहीं दिखता। दरअसल, ये सब फालतू की बातें मानकर नज़रअन्दाज़ कर दिए जाते हैं।"

दौर नई कोशिशों का

"तो क्या सोवियत संघ में स्कूली शिक्षण इतना बढ़िया था कि उसकी वजह से स्पूतनिक का प्रक्षेपण हुआ? यानी कि क्या स्कूली शिक्षण की वजह से ही ऐसे वैज्ञानिक बने और इतनी बड़ी खोज हो सकी?" मास्साब ने सवाल किया।

स्रोत सदस्य ने जवाब कुछ यों दिया, "यही तो दिलचस्प मामला है। ऐसा कोई व्यवस्थित अध्ययन उपलब्ध

नहीं है कि 1960 के दौरान सोवियत संघ में स्कूली विज्ञान शिक्षण की गुणवत्ता से स्पूतनिक का कोई ताल्लुक है भी क्या।

यही वह दौर था जब हमारे यहाँ भी विज्ञान शिक्षण को लेकर कुछ कोशिशें प्रारम्भ हो गई थीं। 1967 में ऑल इंडिया साइंस टीचर्स एसोसिएशन के भौतिकी अध्ययन दल ने एक प्रोजेक्ट चलाया था जिसे वास्तव में एनसीईआरटी का वित्तीय सहयोग प्राप्त था। यह तीन साल तक, खासकर पब्लिक स्कूलों - दून, नाभा और अजमेर में चला। प्रोजेक्ट में नफील्ड कार्यक्रम को भारतीय अन्दाज़ के अनुकूल ढालने की कोशिश की गई थी। यानी कि नफील्ड कार्यक्रम से इस दल को समर्थन प्राप्त था। नफील्ड कार्यक्रम इंग्लैंड में चलाया जा रहा था।"

मास्साब ने बीच में रोककर समझना चाहा, "तो क्या नफील्ड को ही अपने यहाँ पर अपना लिया गया?"

"नहीं, बिलकुल नहीं। ये लोग नफील्ड से प्रभावित थे। उस दौरान जो विज्ञान स्कूलों में पढ़ाया जा रहा था, उससे ये लोग काफी परेशान थे। ये लोग शिक्षक ही थे। एक तो बी.जी. पित्रे व दूसरे सी.के. दीक्षित, ये दोनों भौतिक शास्त्र से ताल्लुक रखते थे।"

फिज़िक्स थ्रू एक्सपेरिमेंट

"हमारे देश में जो प्रोजेक्ट प्रारम्भ किया गया था, उसका नाम था फिज़िक्स थ्रू एक्सपेरिमेंट। इसकी किताबें विज्ञान शिक्षण के अनुरूप थीं। जहाँ विज्ञान की पारम्परिक किताबें जानकारियों से भरी थीं, वहीं फिज़िक्स थ्रू एक्सपेरिमेंट की किताबें बच्चों को ज्ञान हासिल करने के तरीके सिखाने पर केन्द्रित थीं। विज्ञान में प्रयोग करके कैसे ज्ञान को रचा जाता है, इसमें माहिर बनाने की कोशिश थी।

फिज़िक्स थ्रू एक्सपेरिमेंट को जिन स्कूलों में चलाया जा रहा था, वहाँ एनसीईआरटी ने कोई दिलचस्पी नहीं ली। तब पित्रे और दीक्षित ने बम्बई (अब मुम्बई) के टीआईएफआर के वैज्ञानिकों के बीच चर्चा की। वे लोग भी विज्ञान शिक्षण की दकियानूसी विधि से परेशान थे। उन सबको लगता था कि विज्ञान एक ऐसा विषय है जो समाज के साथ जुड़े। टीआईएफआर के लोगों को जब इस

प्रकार के प्रयोग का पता चला तो उनमें खलबली मच गई। प्रोफेसर यशपाल और वी.जी. कुलकर्णी जैसे वैज्ञानिकों ने इसे मुम्बई में नगर निगम के स्कूलों में चलाने की पेशकश की। संयोग से मुम्बई नगर निगम के दस स्कूलों में इसे चलाने की अनुमति भी मिल गई।

बम्बई में तीन साल तक यह कार्यक्रम अच्छे से चलाया गया। तीन साल के बाद कार्यक्रम को बन्द इसलिए करना पड़ा क्यूँकि नगर निगम ने परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन करने की छूट नहीं दी, जिसके बिना इस प्रयास की कोई सार्थकता ही नहीं थी।"

बम्बई से होशंगाबाद

"तो फिर यह कार्यक्रम होशंगाबाद कैसे पहुँचा?" मास्साब समझना चाह रहे थे।

"हाँ, यह सवाल भी दिलचस्प है। उस दौरान टीआईएफआर में एक अन्य व्यक्ति उपस्थित थे जिनका नाम है अनिल सद्गोपाल।"

स्रोत सदस्य को बीच में ही रोक दिया मास्साब ने। "तो अच्छा, ये अनिल भाई उस वक्त मुम्बई में थे!"

"हाँ, अनिल सद्गोपाल मुम्बई में शुरू हुए इस विज्ञान के प्रशिक्षण में पहुँच गए थे और वे ध्यान से उसे देख-परख रहे थे। वे विज्ञान के इस प्रशिक्षण से काफी प्रभावित हुए। यह वह वक्त था जब वे मुम्बई छोड़कर किशोर भारती को बनाने की प्रक्रिया में लगे हुए थे।

होशंगाबाद विज्ञान की शुरुआत 1972 में हुई। अनिल सद्गोपाल और मित्र मण्डल केन्द्र के संयोजक, सुदर्शन कपूर की आपसी बातचीत में मुम्बई के कार्यक्रम के बारे में विस्तार से चर्चा हुई। सुदर्शन कपूर को लगा कि ऐसे कार्यक्रम को हमारे यहाँ भी शुरू करना चाहिए और इस प्रकार बात आगे बढ़ी।

मित्र मण्डल केन्द्र और किशोर भारती ने मिलकर यह प्रस्ताव रखा कि शिक्षा ऐसी हो जिसमें बच्चे स्वयं अपने हाथों से प्रयोग करें, प्रयोगों के अवलोकन करें और उन्हें अपनी भाषा में लिखें। फिर उन अवलोकनों के आधार पर अपने साथियों और शिक्षकों से चर्चा करके खुद ही स्वतंत्र निष्कर्ष निकालें। उन्हें शिक्षक से सवाल पूछने के लिए प्रेरित किया जाए और उन सवालों का उत्तर ढूँढ़ने के लिए उचित प्रयोगों की रचना करने के लिए सक्षम बनाया जाए। शिक्षक की भूमिका सर्वज्ञाता होने की बजाय प्रेरणास्रोत, मार्गदर्शक व सहयोगी जैसी हो। इन मकसदों की पूर्ति के लिए परम्परागत छात्र-शिक्षक सम्बन्ध, पाठ्यपुस्तकें, पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धति बदलने की तैयारी हो। इस प्रकार का प्रस्ताव शिक्षा विभाग के सामने रखा गया।

और कितना कबाड़ा?

उस दौरान जब मिडिल स्कूलों की विज्ञान की पढ़ाई का सर्वेक्षण और विवेचन किया जा रहा था तो कई सवाल सामने आए। विज्ञान शिक्षण के माध्यम से बच्चे की चिन्तन शक्ति का विकास क्यों नहीं होता? बच्चों को विज्ञान के तथ्य रटने क्यों पड़ते हैं? रटकर परीक्षा देने के बाद उन तथ्यों की सार्थकता क्या है? उस शिक्षा का क्या उपयोग जो स्कूल की चारदीवारी के भीतर की पढ़ाई को वास्तविक जीवन के अनुभव से दूर रखती हो? क्या ऐसी शिक्षा नहीं हो सकती जिसमें बच्चे सीखें और समझें भी? स्कूल बच्चों से जड़, चुप व निष्क्रिय होने की अपेक्षा क्यों करता है? क्या स्कूल इसी तरह बच्चों की जिज्ञासा को कुण्ठित और उनकी चिन्तन शक्ति को अवरुद्ध करते रहेंगे?

इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए किशोर भारती और मित्र मण्डल केन्द्र, रसूलिया के कार्यकर्ता जब मध्य प्रदेश की राजधानी में शिक्षा विभाग के शीर्ष पर विराजमान अधिकारी के पास अपने यहाँ के स्कूलों में विज्ञान शिक्षा के बीजारोपण का प्रस्ताव लेकर गए, तो उन अधिकारी के मातहत ने शंका ज़ाहिर की कि कहीं ये लोग कबाड़ा न कर दें। उन अधिकारी ने पलटकर कहा, "जितना कबाड़ा हो चुका है, इससे ज़्यादा ये लोग और क्या करेंगे! इसलिए इन्हें कार्य करने की अनुमति दे दी जाए।"

बहरहाल, किशोर भारती और मित्र मण्डल रसूलिया को होशंगाबाद ज़िले की ग्रामीण क्षेत्र की चुनी गई 16 शालाओं में कार्य करने की अनुमति मिल गई। भारतीय शिक्षा के इतिहास में सम्भवतः पहली बार सरकार और स्वैच्छिक संस्थाओं की भागीदारी के माध्यम से एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत हुआ, जिसे हम 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' (होविशिका) के नाम से जानते हैं।"

चर्चा का दौर थमने का नाम नहीं ले रहा था। अगले दिन मास्साब को प्रशिक्षण की कक्षा में जाना था। और स्रोत सदस्य को अगले दिन के अपने प्रशिक्षण-सत्र की तैयारी में जुटना था इसलिए न चाहते हुए भी बातचीत को यहीं रोकना पड़ा।

कालू राम शर्मा (1961-2021): अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत थे। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन किया। फोटोग्राफी में दिलचस्पी। *एकलव्य* के शुरुआती दौर में धार एवं उज्जैन के केन्द्रों को स्थापित करने एवं मालवा में विज्ञान शिक्षण को फैलाने में अहम भूमिका निभाई।

सभी चित्र: योगेश्वरी: स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं। साथ ही, म्यूरल और पोर्ट्रेट भी बनाती हैं। शारदा उकील स्कूल ऑफ आर्ट से कला में डिप्लोमा। वर्तमान में, अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर कर रही हैं।

आकाशीय पिण्डों की गति की व्याख्या

हम क्यों कहते हैं कि चन्द्रमा पृथ्वी के आसपास घूमता है?

उमा सुधीर

इन लेखों की श्रृंखला की पिछली किश्त में, मैंने यह चर्चा की थी कि हम गोलाकार धरती तक कैसे पहुँच सकते हैं, और कैसे पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूर्णन, सूर्य और तारों की आभासी दैनिक गति की व्याख्या कर सकता है। ग्रहों की गति ज़्यादा पेचीदा है और इसे तभी देखा जा सकता है जब कई सप्ताह या महीनों तक अवलोकन किए जाएँ। अलबत्ता, मात्र 2-3 दिनों तक किसी निर्धारित समय पर चन्द्रमा की स्थिति को नोट करें तो सूर्य और चन्द्रमा की आभासी गतियों में अन्तर को देखा जा सकता है। जब हम सूर्य की लगभग नियमित गति को देखते हैं, तो चन्द्रमा की गति थोड़ी गड़बड़ दिखती है। चन्द्रमा रोज़ाना थोड़ा अलग भी दिखता है - एक पखवाड़े में वह अदृश्य (अमावस्या) से लेकर पूरा गोला (पूर्णिमा) तक नज़र आता है। इस लेख में हम देखेंगे कि क्यों हमें चन्द्रमा को पृथ्वी के आसपास घुमाना पड़ता है और सूर्य के प्रकाश का क्या असर पड़ता है। बेहतर होगा कि हम वास्तविक अवलोकनों से शुरू करें और फिर यह कयास लगाने की कोशिश करें कि ये अवलोकन हमें चन्द्रमा की गति के बारे में क्या बताते हैं।

गतिविधि 1: हालाँकि (अमावस्या के अलावा) चन्द्रमा को दिन या रात के किसी समय पर देखा जा सकता है, लेकिन ये अवलोकन अमावस्या या पूर्णिमा के कुछ दिन पहले या बाद में करना अच्छा होता है। ये तारीखें हमें किसी भी कैलंडर या पंचांग से मिल जाएँगी। अवलोकन तीन-चार दिन तक किए जा सकते हैं (आगे की चर्चा के लिहाज़ से कम-से-कम दो दिन के अवलोकन ज़रूरी होंगे, लेकिन ज़्यादा दिनों के अवलोकन करने से आप अपने निष्कर्षों को लेकर ज़्यादा आश्वस्त हो सकेंगे)। अवलोकन के दौरान निम्नलिखित बातों को नोट करें (हर दिन चन्द्रमा के आकार को भी नोट कर सकते हैं, इसका उपयोग आगे चन्द्रमा की कलाओं की चर्चा में होगा):

पूर्णिमा से पहले

- क्या सूर्य के अस्त होने के फौरन बाद चन्द्रमा आकाश में दिखता है?
- क्या चन्द्रमा पूर्वी आकाश में दिख रहा है या पश्चिमी आकाश में?
- चन्द्रमा क्षितिज से कितना ऊपर

है? (एक मोटा-मोटा अनुमान लगाया जा सकता है।)

- अवलोकन के दिनों में यह कैसे बदलता है? पूर्णिमा के पहले के दिनों में चन्द्रमा क्षितिज से अधिक ऊपर है या कम?
- उपरोक्त अवलोकनों के आधार पर आप हर दिन चन्द्रोदय के समय के बारे में क्या कह सकते हैं?

पूर्णिमा के बाद

- क्या सूर्य अस्त होने के फौरन बाद चन्द्रमा आकाश में दिख रहा है? सूर्यास्त के कितने समय बाद यह दिखने लगता है? (यदि आप जहाँ से अवलोकन कर रहे हैं, वहाँ से क्षितिज न दिख रहा हो, तो आप मात्र यह रिपोर्ट कर सकते हैं कि हर दिन चन्द्रमा क्षितिज से कितना ऊपर दिखता है।)
- अवलोकन के दिनों में इसमें क्या परिवर्तन होता है? क्या हर दिन (रात) चन्द्रमा पिछले दिन से पहले उगता है या बाद में?

अमावस्या के बाद

- क्या सूर्य अस्त होने के फौरन बाद चन्द्रमा आकाश में दिख रहा है?
- क्या वह पूर्वी आकाश में है या पश्चिमी आकाश में?
- क्षितिज से कितना ऊपर है?
- अपने अवलोकनों के आधार पर आप प्रतिदिन चन्द्रोदय के समय के बारे में क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं?

अमावस्या से पहले

यदि आप चन्द्रमा का अवलोकन अमावस्या से पहले कर रहे हैं, तो आपको चन्द्रमा को अल्सुबह खोजना होगा। सम्भव हो तो सूर्योदय से कम-से-कम आधा घण्टा पहले।

- क्या चन्द्रमा सूर्योदय से पहले आकाश में नज़र आता है?
- वह पूर्वी आकाश में है या पश्चिमी में?
- क्षितिज से कितना ऊपर है?
- अपने अवलोकनों के आधार पर आप हर दिन चन्द्रोदय के समय के बारे में क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं?

मात्र दो दिनों तक चन्द्रमा को एक ही समय पर देखना (यह समय इस बात पर निर्भर करेगा कि आप चन्द्रमा को पूर्णिमा या अमावस्या के पहले या बाद में देख रहे हैं) यह समझने के लिए पर्याप्त है कि मात्र पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूर्णन के आधार पर प्रतिदिन चन्द्रमा की आभासी गति की व्याख्या नहीं की जा सकती। सूर्य के मामले में तो जब पृथ्वी एक घूर्णन पूरा करके अपनी प्रारम्भिक स्थिति में लौट आती है तो सूर्य भी आकाश में उसी बिन्दु पर आ जाता है।[1] लेकिन चन्द्रमा? जब भी हम लगातार दो दिनों तक एक ही समय पर चन्द्रमा

[1] *एकदम उसी बिन्दु पर तो नहीं आता, लेकिन उसकी चर्चा बाद में।*

को खोजने की कोशिश करते हैं, तो पता चलता है कि वह उस जगह नहीं है जहाँ पिछले दिन था (और-तो-और उसकी आकृति भी अलग होती है, जिसकी बात हम इस लेख में आगे करेंगे)। अलबत्ता, हम देखते हैं कि एक महीने से थोड़े कम समय में चन्द्रमा उसी स्थिति पर आ जाता है और उसकी आकृति भी पहले जैसी हो जाती है। इससे हमें क्या पता चलता है कि चन्द्रमा कैसे गति कर रहा होगा?

हमने आकाशीय पिण्डों की आभासी गति की व्याख्या पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूर्णन के आधार पर की थी। पहली समस्या, यदि चन्द्रमा 24 घण्टे बाद आकाश में उसी जगह पर नहीं दिखता है, तो इसकी व्याख्या के लिए पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूर्णन के अलावा किसी अन्य चीज़ का सहारा लेना पड़ेगा। और चूँकि चन्द्रमा उस बिन्दु पर वापिस लौटता दिखता है जहाँ वह लगभग एक माह पहले था[2], तो चन्द्रमा पृथ्वी की एक परिक्रमा इतने समय में करता है। लेकिन चन्द्रमा यह परिक्रमा किस दिशा में कर रहा है? हमने दिन-ब-दिन आकाश में चन्द्रमा की स्थिति के बारे में जो आँकड़े इकट्ठे किए हैं, उनके आधार पर इस सवाल का जवाब पता करने में मज़ा आएगा।

गतिविधि 2: एक छोटी गेंद लीजिए, यह चन्द्रमा का प्रतिनिधित्व करेगी। एक ग्लोब भी ले लीजिए। कमरे में किसी भी बिन्दु को सूर्य माना जा सकता है, या एक टॉर्च का उपयोग भी कर सकते हैं। गतिविधि-1 में इकट्ठे किए आँकड़ों के किसी भी सेट का उपयोग करके एक-एक दिन चन्द्रमा की स्थिति का आकलन कीजिए। उदाहरण के लिए, यदि पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य एक सीधी रेखा पर हैं और चन्द्रमा बीच में है, तो आप पृथ्वी से चन्द्रमा का वह हिस्सा नहीं देख पाएँगे जो सूर्य के प्रकाश से आलोकित है।

अमावस्या के दिन यही होता है। आपने नोट किया होगा कि अमावस्या के अगले दिन क्रिसेंट (लकीर जैसा चन्द्रमा) पश्चिमी आकाश में सूर्यास्त के बाद दिखता है और वह भी एकाध घण्टे में अस्त हो जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि चन्द्रास्त तभी होता है जब पृथ्वी 24 घण्टे से ज़्यादा समय तक घूर्णन कर चुकी होती है। अर्थात्, यदि चन्द्रमा की स्थिति न बदली होती, तो वह हर दिन उसी समय पर अस्त हुआ होता। चूँकि चन्द्रमा थोड़ी देर बाद अस्त होता है, तो इसका मतलब है कि जब पृथ्वी 24 घण्टे बाद अपनी मूल स्थिति में पहुँचती है, तो चन्द्रमा आकाश में बना रहता है और तब अस्त होता है जब पृथ्वी थोड़ा और घूम चुकी होती

[2] *चन्द्रमा इसके लिए 29.5 दिन का समय लेता है, हम इसे एक महीना मान लेते हैं ताकि गणनाएँ आसान रहें।*

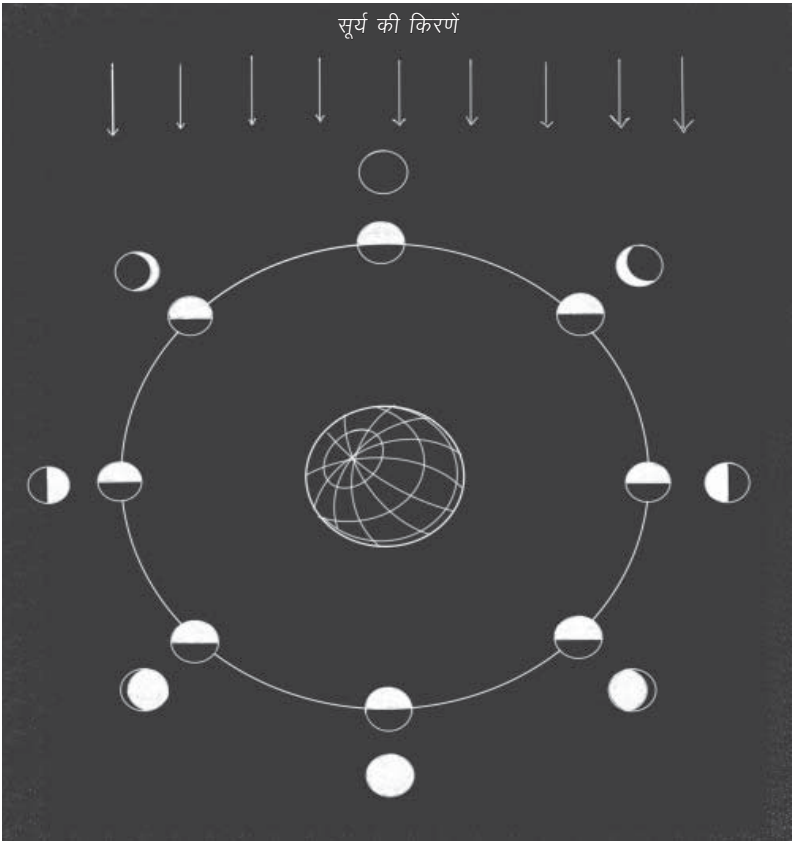

चित्र-1: *चन्द्रमा की कलाएँ*

पृथ्वी के आसपास चन्द्रमा की कक्षा की दिशा

जैसा कि पिछले लेख में किया था, यहाँ भी हम पृथ्वी के आसपास चन्द्रमा की गति को दर्शाने के लिए क्लॉकवाइस और एंटीक्लॉकवाइस शब्दों का उपयोग करेंगे और यहाँ भी ध्यान रखने की बात यह है कि यदि हम पृथ्वी-चन्द्रमा तंत्र (निकाय) को ध्रुव तारे की ओर से देखें (एक शक्तिशाली दूरबीन की मदद से) अर्थात् हम पृथ्वी को उत्तरी ध्रुव के ऊपर किसी बिन्दु से देखें, तो चन्द्रमा की परिक्रमा की दिशा उसके विपरीत होगी जब हम इस तंत्र को दक्षिणी ध्रुव के ऊपर किसी बिन्दु से देखते हैं।

है। ऐसा होने के लिए चन्द्रमा को पृथ्वी के आसपास किस दिशा में गति करना होगी? ध्रुव तारे की ओर से देखने पर क्लॉकवाइस या एंटी-क्लॉकवाइस?

इस प्रयोग को चन्द्रमा को पृथ्वी के आसपास क्लॉकवाइस और एंटी-क्लॉकवाइस परिक्रमा करवाकर कीजिए और पता लगाइए कि दोनों मामलों में हर दिन वह पिछले दिन से पहले उदय तथा अस्त होगा या बाद में। चूँकि यह पता लगाना काफी आसान है, इसलिए मैं यहाँ उत्तर नहीं बताऊँगी, लेकिन टोलियों के लिए यह पता करना दिलचस्प होगा कि किसी एक मॉडल का इस्तेमाल करके अलग-अलग दिखने वाले आँकड़ों की मदद से इसका खुलासा करें। लगभग ऐसे ही तरीके की मदद से यह भी अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा किस दिशा में करती है। एक बार जब सब लोग इस बारे में सहजता से सोचने लगें कि चन्द्रमा पृथ्वी के आसपास कैसे घूमता है, तो हम महीने भर में चन्द्रमा की बदलती कलाओं को समझने की कोशिश कर सकते हैं (चित्र-1)।

गतिविधि 3: इस गतिविधि को ऐसे किसी भी समय किया जा सकता है जब चन्द्रमा और सूर्य, दोनों नज़र आ रहे हों और सूर्य पूर्वी या पश्चिमी आकाश पर नीचे की ओर हो। इसका मतलब हुआ कि यदि इस गतिविधि

चित्र-2: *क्या गेंद पर बनी 'कला' चाँद की कला से मेल खाती है?*

को शाम के समय करना है, तो अमावस्या के 3-6 दिन बाद का दिन ठीक रहेगा। आकाश में चन्द्रमा की स्थिति को चिन्हित कीजिए और गेंद को उठाकर उसी दिशा में रखिए ताकि सूर्य की रोशनी गेंद पर पड़े। ज़ाहिर है, गेंद का सूर्य की ओर वाला आधा हिस्सा आलोकित होगा और शेष आधा हिस्सा अँधेरे में रहेगा। लेकिन आप गेंद के आलोकित हिस्से के सिर्फ एक अंश को ही देख पाएँगे। इस अंश की आकृति की तुलना चन्द्रमा की कला से कीजिए (चित्र-2)। इस गतिविधि को अलग-अलग दिन दोहराइए। और हर दिन गेंद के आलोकित हिस्से के दिखने वाले अंश और चन्द्रमा की कला के चित्र बनाइए।

हो सकता है कि एक के बाद एक दिनों के बीच आकृति में अन्तर साफ

प्रतिदिन चन्द्रमा कब उदय होगा?

सत्र में एक आम सवाल यह उठता है कि लोगों को करवा चौथ का व्रत तोड़ने के लिए इतना इन्तज़ार क्यों करना पड़ता है। और मैं हमेशा कहती हूँ कि इस व्रत के लिए चुना गया दिन एक साज़िश है।

खैर, एक मोटी-मोटी गणना करके बताया जा सकता है कि अमावस्या या पूर्णिमा के बाद किसी दिन चन्द्रमा कब उदय (या अस्त) होगा। चूँकि चन्द्रमा को एक पूर्णिमा से अगली पूर्णिमा तक पहुँचने में 29.5 का समय लगता है, तो हम इस अवधि को चन्द्रमा द्वारा पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी करने का समय मान सकते हैं। चूँकि इस परिक्रमा को वृत्ताकार माना जा सकता है, यानी यह 360 डिग्री की है तो हम कह सकते हैं कि चन्द्रमा प्रतिदिन लगभग 12 डिग्री चलता है। हम पहले गणना कर चुके हैं कि पृथ्वी एक घण्टे में 15 डिग्री घूर्णन करती है, तो इसका मतलब हुआ कि चन्द्रमा हर दिन तकरीबन 50 मिनट बाद उदय होगा। चूँकि पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा सूर्य से विपरीत दिशा में होता है, इसलिए हम मान सकते हैं कि उस दिन चन्द्रोदय का समय और सूर्यास्त का समय एक ही होगा (थोड़ा फर्क होगा लेकिन मोटे तौर पर सही है)। अगले दिन चन्द्रमा सूर्यास्त के समय से 50 मिनट देर से उगेगा, तीसरे दिन करीब डेढ़ घण्टा देरी से वगैरह। चूँकि चन्द्रमा तब तक नज़र नहीं आता, जब तक कि वह क्षितिज से थोड़ा ऊपर न आ जाए (खास तौर से यदि आप पहाड़ियों और पेड़ों के बीच रहते हों), आप समझ ही सकते हैं कि करवा चौथ के दिन चन्द्रमा दिखने का इन्तज़ार कितना कष्टदायक होता होगा। हाल में, मैं जिस समूह के साथ काम कर रही थी, वहाँ से एक सुझाव आया था कि यह व्रत करवा दूज के दिन किया जाए, ताकि हम रोज़ के समय पर भोजन कर सकें!

न दिखे, लेकिन यह अन्तर दो दिनों का अन्तराल होने पर साफ दिखेगा।

इस गतिविधि से हमें सुराग मिलता है कि क्यों एक महीने से थोड़ी कम अवधि में समय के साथ हमें चन्द्रमा की अलग-अलग कलाएँ देखने को मिलती हैं। इस समझ को निम्नलिखित गतिविधि से और पुष्ट किया जा सकता है।

गतिविधि 4: इस गतिविधि के लिए हमें एक ग्लोब, एक छोटी गेंद और एक टॉर्च की आवश्यकता होगी। पृथ्वी के लिए एक बड़ी गेंद का उपयोग भी किया जा सकता है लेकिन ग्लोब का उपयोग करना बेहतर है ताकि आप स्वयं को किसी जाने-पहचाने स्थान पर रख सकें और यह पता कर सकें कि वहाँ से क्या नज़र आएगा। सबसे पहले टॉर्च (सूर्य) को चमकाएँ ताकि उसका प्रकाश ग्लोब (पृथ्वी) और गेंद (चन्द्रमा), दोनों पर पड़े। गेंद को ग्लोब के आसपास घुमाएँ। ऐसा करते हुए यह ध्यान रखें कि गेंद ग्लोब की छाया में न आए और न ही गेंद की छाया ग्लोब पर पड़े।[3] यह आसानी-से देखा जा सकता है कि गेंद का आधा हिस्सा सदैव टॉर्च से आलोकित है और आधा हिस्सा अन्धकार में है। इसी प्रकार से ग्लोब के आधे हिस्से पर रोशनी है (पृथ्वी का वह हिस्सा जहाँ दिन है) जबकि शेष आधा हिस्सा अन्धकार में है (जहाँ रात हो चुकी है)। गेंद को ग्लोब के आसपास घुमाते हुए यह स्पष्ट हो जाएगा कि हर 24 घण्टे की अवधि में विभिन्न बिन्दुओं पर कभी-कभी चन्द्रमा दिन में कुछ समय नज़र आएगा और रात में भी। अलबत्ता, जब चन्द्रमा सूर्य के अपेक्षाकृत नज़दीक होता है, तब वह हमें दिखाई नहीं देगा, सिवाय अल्सुबह के या शाम के करीब क्योंकि जब सूर्य आकाश में काफी ऊपर होता है तब हम उसकी ओर देख नहीं पाएँगे (कोशिश भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने पर आँखों को नुकसान हो सकता है)।

इसके बाद स्वयं को ग्लोब पर अवस्थित कीजिए और कल्पना कीजिए कि चन्द्रमा के प्रकाशित आधे हिस्से में से आपको कितना दिखेगा। पहले सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी की उन सापेक्ष स्थितियों का पता लगाइए जब आपको पूर्णिमा का चाँद नज़र आएगा और कब उसका कोई हिस्सा नहीं दिखाई पड़ेगा। इसके बाद यह पता करने की कोशिश कीजिए कि किस स्थिति में चन्द्रमा के आलोकित हिस्से में से ठीक आधा पृथ्वी से नज़र आएगा। देख लीजिए कि क्या आप 30 दिन की अवधि में चन्द्रमा की सारी कलाओं के लिए स्थितियों का अनुमान लगा सकते हैं।

एक बार जब हमने पृथ्वी के

[3] *ऐसा होने पर हम ग्रहण की स्थिति में पहुँच जाएँगे, जिसकी चर्चा हम फिलहाल नहीं कर रहे हैं।*

जब क्रिसेंट चन्द्रमा दिखता है, तब चन्द्रमा का पूरा गोला क्यों हल्का-सा प्रकाशित दिखता है? बाकी दिन क्यों नहीं?

आपने देखा होगा कि जब अमावस्या के बाद क्वार्टर चन्द्रमा दिखता है (जब आधा चन्द्रमा दिखता है, इसे क्वार्टर चन्द्रमा कहते हैं क्योंकि उसने पृथ्वी के आसपास चौथाई परिक्रमा पूरी कर ली होती है), उस समय शेष आधा हिस्सा पूरी तरह अन्धकार में होता है और बिलकुल भी नहीं दिखता। लेकिन अमावस्या के 3-4 दिन बाद जब आकाश में पर्याप्त अँधेरा हो जाने के बाद क्रिसेंट चन्द्रमा दिखता है, तब क्रिसेंट तो पूरी तरह प्रकाशित होता ही है, परन्तु साथ में चन्द्रमा के पूरे गोले को दर्शाता एक हल्का-सा वृत्त भी नज़र आता है। चन्द्रमा पर पड़ने वाली इस हल्की-सी रोशनी का स्रोत क्या है?

दिलचस्प बात है कि यह हल्की-सी रोशनी हम तक कई परावर्तनों के उपरान्त पहुँचती है – पृथ्वी भी सूर्य के प्रकाश से आलोकित होती है और चन्द्रमा के समान वह भी इसमें से कुछ प्रकाश को अन्तरिक्ष में परावर्तित कर देती है (जैसे हम सारे ग्रहों को उनके द्वारा परावर्तित सूर्य के प्रकाश की बदौलत देख पाते हैं)। क्रिसेंट स्थिति में, पृथ्वी से परावर्तित कुछ प्रकाश चन्द्रमा की ओर भी जाता है जिसे चन्द्रमा पुनः पृथ्वी की ओर परावर्तित कर देता है! पृथ्वी के इस हल्के-से प्रकाश में एक साधारण दूरबीन की मदद से भी चन्द्रमा के गड्ढों का अवलोकन आसानी-से किया जा सकता है।

चित्र इंटरनेट से साभार

चित्र-3: *क्रिसेंट चन्द्रमा - साथ में चन्द्रमा के पूरे गोले को दर्शाता एक हल्का-सा आलोकित वृत्त नज़र आता है।*

क्वार्टर चन्द्रमा के समय पृथ्वी से परावर्तित प्रकाश चन्द्रमा के अँधेरे हिस्से की ओर नहीं जाता, इसलिए हमें सिर्फ आधा चन्द्रमा ही दिखता है।

आसपास चन्द्रमा की गति का अन्दाज़ लगा लिया है और यह भी देख लिया है कि वह प्रतिदिन कितना चलता है, तो हम यह समझ सकते हैं कि क्यों हर बार पूर्णिमा का चन्द्रमा ठीक उस समय उदय नहीं होता जब सूर्यास्त होता है (पृथ्वी के कुछ हिस्सों में अवश्य पूर्णिमा का चन्द्रमा ठीक सूर्यास्त के समय उदय हुआ होगा; लेकिन भारत में हमारे लिए या तो चन्द्रमा एकदम विपरीत बिन्दु पर नहीं पहुँचा होगा या हो सकता है, उससे आगे बढ़ गया हो)। इससे इस बात की भी व्याख्या हो जाती है कि क्यों ईद का त्योहार दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग दिन मनाया जाता है (हो सकता है कि किसी देश में क्रिसेंट चन्द्रमा सूर्यास्त के समय सूर्य के बहुत निकट हो, और तब चन्द्रमा सूर्यास्त के तत्काल बाद अस्त हो जाएगा। इसलिए हो सकता है कि उस समय इतना अँधेरा न हुआ हो कि अस्त होने से पहले चन्द्रमा दिख सके)।

यदि आपके मन में चन्द्रमा को लेकर (ग्रहण के अलावा) कोई सवाल हों, तो लिखकर पूछ लें।

उमा सुधीर: *एकलव्य* के साथ जुड़ी हैं। विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में काम कर रही हैं।
अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।
सभी चित्र: हरमन: चित्रकार हैं। दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक और अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। भटिंडा, पंजाब में रहते हैं।

विकिपीडिया पर कुछ वीडियो हैं जिनमें दिखाया गया है कि चन्द्रमा की कलाएँ कैसी दिखती हैं। चन्द्रमा की कलाओं के बारे में समझने के लिए इंटरनेट पर उपलब्ध कुछ उपयोगी सन्दर्भ सामग्री को देखने के लिए नीचे दिए गए QR code को स्केन करें:

भाप की कथा

हरिशंकर परसाई

चित्र: हरमन

घर्र-घर्र! घर्र-घर्र! छक-छक! छक-छक!... करता रेल का इंजन दौड़ता हुआ प्लेटफॉर्म की ओर चला आ रहा है। इंजन के पीछे आठ-दस और डिब्बे हैं, जिनमें यात्री बैठे हुए हैं। कोई कहीं जा रहा है, तो कोई कहीं से आ रहा है। प्लेटफॉर्म पर गाड़ी रुकी और जनसैलाब एकदम उमड़ पड़ा। चारों तरफ भीड़-ही-भीड़। इतनी कि यात्रियों का बैठना-उतरना मुश्किल। सामने इंजन खड़ा सी-सी, घी-घी, धुक-धुक की लम्बी आवाज़ें निकाल रहा है।

मैंने अपने मित्र से कहा, "इंजन से यह 'सी-सी!' की आवाज़ क्यों आ रही है?" उसने बताया, "यह सेफ्टी वॉल्व है जिसके ज़रिए अतिरिक्त भाप बाहर फेंकी जा रही है।" मेरी जिज्ञासा बढ़ी और मैंने और भी सवाल दाग दिए, कुछ आसान, तो कुछ बहुत-ही पेचीदा।

"भाप कैसे बनती है?" मैंने पूछा।

"पानी को जब गर्मी मिलती है, तो

वह भाप के रूप में ऊपर उड़ने लगता है। पानी का वाष्पीकरण गर्मी के द्वारा ही होता है।" मेरे मित्र ने जवाब दिया।

"पर इंजन चलता कैसे है?" मैंने पूछा।

"इसी भाप की सहायता से!" मित्र ने तपाक से जवाब दिया।

इतना कहते-कहते वह रुकने-सा लगा। मैंने अधीर होकर उससे अपनी बात पूरी करने का आग्रह किया। मित्र ने बात जारी रखते हुए कहा, "इस प्रकार के इंजन तथा भाप से चलने वाले अन्य यंत्रों को देखते ही मुझे इस भाप की ऊपरी सतह पर एक वैज्ञानिक का चित्र तैरता दिखलाई देने लगता है! क्या तुम उस वैज्ञानिक के बारे में अन्दाज़ा लगा सकते हो?" पूरी तरह से अनभिज्ञता प्रकट कर मैंने इसका उत्तर चाहा। मित्र ने कहा कि उस वैज्ञानिक का नाम 'जेम्स वॉट' (James Watt) था। जेम्स वॉट ने भाप के इस चमत्कार का आविष्कार कैसे किया, इसकी कहानी विचित्र है।

इयोलिपाइल से इंजन तक

प्रथम शताब्दी में ही इस भाप के उपयोग का सूत्रपात हो गया था। ईसा के पूर्व एक दार्शनिक हुआ था। उसका नाम 'हीरो' (Hero of Alexandria) था। हीरो, जिसे हेरन भी कहा जाता है, एक ग्रीक दार्शनिक था। वह एलेक्सज़ेंड्रिया में रहता था। उसने कुछ विशेष प्रकार के खिलौने देखे और उनकी वजह से इस प्रकार के इंजन की कल्पना की थी। इस खिलौने को वह 'इयोलिपाइल' (Aeolipile) कहा करता था। यह खिलौना एक धुरी पर चढ़ा धातु का एक खोखला गोला था, जिससे एक-दूसरे से विपरीत दिशाओं में निकलती दो नलियाँ जुड़ी हुई थीं। गोला नीचे रखे बॉयलर से दो अन्य नलियों के ज़रिए जुड़ा होता था। बॉयलर को नीचे से गर्म किया जाता जिससे उसमें भरे पानी का वाष्पीकरण होता था। भाप ऊपर उठकर गोले में इकट्ठा होती जिससे गोले में दबाव बनता और भाप नलियों के रास्ते

हीरो द्वारा आविष्कृत इयोलिपाइल। विपरीत दिशाओं में मुड़ी दो नलियों द्वारा भाप के निकलने से धुरी पर चढ़ा गोला घूमने लगता है।

चित्र इंटरनेट से साभार

विपरीत दिशाओं में बाहर निकल जाती। इससे गोले में हलचल होती थी और वह भाप के धक्के के कारण चलने लगता था। यह खिलौना ही वास्तव में इंजन की प्रथम कल्पना थी।

इस युग के पश्चात् यह आविष्कार प्रायः सुषुप्त रहा। किन्तु 16वीं शताब्दी में, यूरोपीय पुनर्जागरण के दौरान, प्राचीन ज्ञान और आविष्कारों में बढ़ती रुचि के चलते, इसे फिर से खोजा गया। फिर तो पूरे यूरोप में इसके अनेक प्रयोग किए जाने लगे थे। विभिन्न प्रकार की नलियों में भाप को भरकर उसकी शक्ति को मापा जाता था और पानी की सतह पर कोई हल्की वस्तु को रखकर उस वस्तु की भाप के कारण उठने की क्रिया का वैज्ञानिक निरीक्षण किया जाता था।

वाष्पीकरण के प्रयोगों का चलन

ऐसे प्रयोगों के आधार पर सर्वप्रथम सम्भवतः सैलोमोन डी कॉस (Salomon de Caus) ने भाप की शक्ति का वास्तविक परीक्षण किया। उसने एक खोखला गोला लेकर उसमें दो नलियाँ लगा दीं और गोले को आग के ऊपर रख दिया। एक नली गोले में पानी भरती जाती, वहीं दूसरी नली का एक मुँह पानी में डूबा रहता और दूसरा मुँह गोले के ऊपरी हिस्से से बाहर निकलता। पानी के उबलने से बनती भाप गोले के अन्दर दबाव बनाती, जिससे कि पानी दूसरी नली के ज़रिए फव्वारे के रूप में गोले से बाहर निकलता। इस प्रकार भाप की शक्ति के एकत्रीकरण की क्रिया का परीक्षण इस वैज्ञानिक ने किया।

इसके पश्चात एक और वैज्ञानिक अवलोकन थॉमस सेवरी (Thomas Savery) ने किया। कहा जाता है कि सेवरी ने एक बोतल को आग में फेंक दिया। उस बोतल में शराब भरी थी किन्तु आग में फेंकने से पहले उसे खाली कर लिया गया था। उसने देखा कि जब बोतल गरम हुई तो शराब की जो बून्दें उस बोतल में शेष रह गई थीं, वे वाष्प का रूप धारण

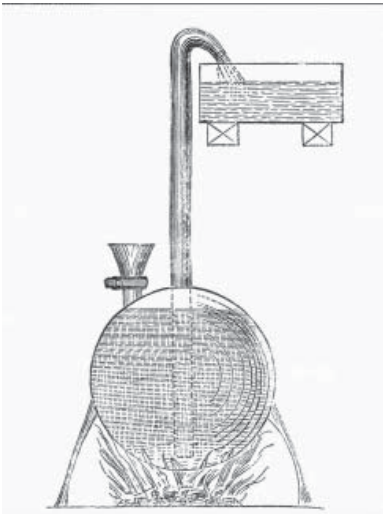

सैलोमोन डी कॉस द्वारा आविष्कृत एक भाप उपकरण का चित्र। जैसे-जैसे गोले में रखा पानी उबलने लगता है, वैसे-वैसे गोले में भाप इकट्ठी होती जाती है, जिसके दबाव से पानी नली के रास्ते ऊपर चढ़ने लगता है। चित्र इंटरनेट से साभार।

करने लगीं। इस वाष्पीकरण की क्रिया ने उसे चमत्कृत कर दिया। इसके पश्चात् उसने एक नली बोतल में डाली, और देखा कि वाष्प उस नली के द्वारा, नली के मुख की ओर चली आ रही है। भाप को एकत्रित करते हुए उसने यह भी देखा कि उस वाष्प का रूपान्तरण भी पानी के ही रूप में हो रहा है। इससे उसने वाष्प के रूपान्तरण की कल्पना की और वाष्प की शक्ति का प्रयोग करते हुए भाप से चलने वाला एक पम्प बनाया, जिसका प्रयोग खदानों से पानी खींचने में किया जाने लगा। इस पम्प को 'माइनर्स फ्रेंड' (खान-मज़दूर का दोस्त) तथा 'सेवरी इंजन' कहा जाने लगा।

तभी से वाष्प के इस प्रकार के उपयोग करने की प्रक्रिया चल पड़ी। सन् 1663 से 1726 के बीच थॉमस न्यूकमेन (Thomas Newcomen) ने इस वाष्प का विस्तृत प्रयोग किया और कुछ ऐसे यंत्रों का निर्माण भी किया जिनका संचालन भाप के द्वारा होता था। उसने एक मशीन की सहायता से अन्य मशीनों के संचालन के कई प्रयास किए और अन्त में एक मशीन की सहायता से अन्य मशीनें भी चलने लगीं।

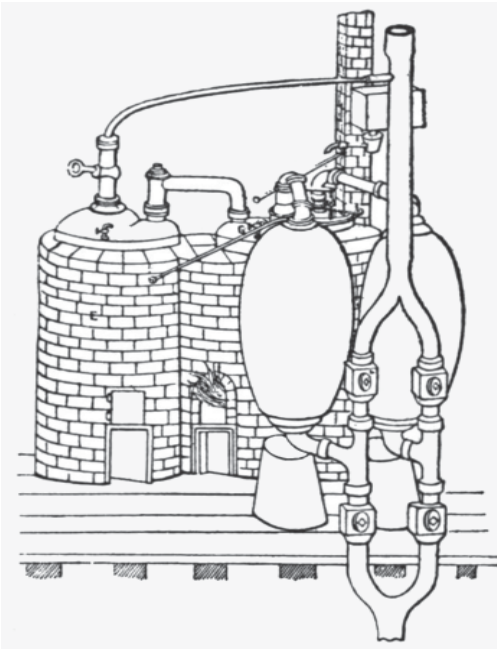

सेवरी इंजन का एक चित्र। खान-मज़दूर का दोस्त, एक ऐसा पम्प जो भाप का इस्तेमाल कर वैक्यूम का निर्माण करता, जिससे खदानों में भर चुके पानी को बाहर निकाला जाता। चित्र इंटरनेट से साभार।

भाप से मशीन के संचालन के लिए उसने एक ऐसा पात्र चुना जिसमें पानी उबलता रहता था और उसमें लगातार बन रही भाप नलियों के द्वारा एकत्रित होकर एक यंत्र को संचालित करती थी। यह यंत्र दूसरी मशीन को संचालित करता था। इस प्रकार एक के बाद एक अन्य मशीनें भी संचालित होती चलती थीं। आग को प्रज्ज्वलित रखने के लिए कोयले का प्रयोग किया जाता था। इसी आधार पर वाष्प से चलने वाली मशीनों का आविष्कार हुआ। मोटरें

तथा अन्य यंत्र भी इसी के द्वारा चलने लगे। थॉमस न्यूकमेन के इस कार्य की ख्याति तो हुई किन्तु उतनी नहीं, जितनी जेम्स वॉट को मिली।

क्यूँ अलग है जेम्स का आविष्कार?

इसी सिलसिले में अगली छलाँग लगाते हुए, जेम्स वॉट ने भाप से चलने वाले एक नए इंजन का आविष्कार किया। इससे पूर्व जिन इंजनों का प्रयोग किया जाता था, उनमें कार्य-कुशलता की बहुत कमी थी। उन इंजनों के स्टीम चेंबर में ही, जहाँ भाप के दबाव और निर्वात से पिस्टन चलता है, चेंबर के ऊपर ठण्डा पानी डालकर भाप का संघनन किया जाता था। भाप का स्थानान्तरण सम्भव न था। इससे असुविधा यह होती थी कि स्टीम चेंबर के बार-बार ठण्डा होने से ऊर्जा बरबाद होती और इंजन की कार्य-क्षमता घटती थी। अतः यह मॉडल इतना उपयोगी नहीं था। ऐसी स्थिति में, जेम्स वॉट ने एक अलग कंडेंसर, यानी संघनन चेंबर, का ही निर्माण कर दिया। भाप को कंडेंसर में स्थानान्तरित कर संघनित किया जाने लगा। इस इंजन में स्टीम चेंबर को ठण्डा करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी, जिससे ऊर्जा की बरबादी में भारी कमी आई और इंजन की कार्य-कुशलता बहुत हद तक बढ़ गई।

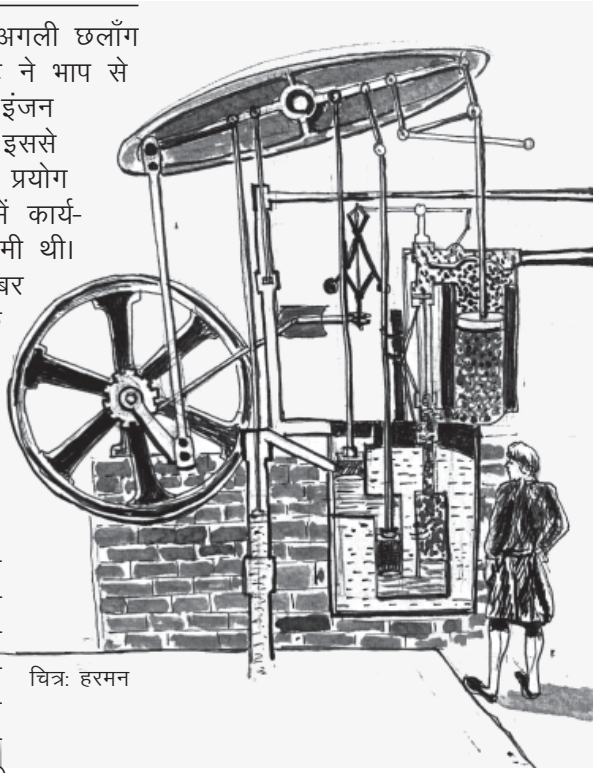

चित्र: हरमन

जेम्स वॉट के स्टीम इंजन का चित्र। बाईं ओर दर्शाई नली से भेजी जा रही भाप के दबाव और निर्वात से नली से जुड़े चेंबर में पिस्टन चलने लगता। इस इंजन की खासियत इसका कंडेंसर (संघनन चेम्बर) था जिसे नीचे बाईं ओर देखा जा सकता है। भाप के संघनन के लिए एक अलग चेम्बर होने से इंजन की कार्य कुशलता पिछले इंजनों के मुकाबले बहुत बेहतर थी।

कैसा था जेम्स का अतीत?

इस पूरे विवरण को सुनकर मेरे मन में अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ उत्पन्न हुईं। जेम्स वॉट ने इस प्रकार के इंजन की कल्पना कैसे कर ली? क्या वह आरम्भ से ही इस प्रकार के इंजन के बारे में सोच-विचार करता रहा था? यह बात सुनकर मेरा साथी हँसने लगा।

मेरी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए मेरे मित्र ने बताया, "जेम्स वॉट प्रारम्भ में मन्द बुद्धि का बालक माना जाता था। उसकी शिक्षिका उसकी भर्त्सना करते हुए कहा करती थी कि उसने ऐसा निष्क्रिय और निश्चेष्ट बालक देखा ही नहीं। कक्षा में वह एक शब्द भी नहीं बोलता था।"

चित्र: हरमन

वह चाय-भरा कप लेकर उससे निकलने वाली भाप को देखता रहता था और कभी-कभी चम्मच को उस भाप के ऊपर औन्धा रख देता था। भाप जब उस चम्मच से टकराती थी तो उसका रूपान्तरण हो जाता था और वह पानी के रूप में परिवर्तित हो जाती थी। वह देखता रहता था कि चम्मच पर बून्दों का जमाव किस प्रकार होता है। पानी का रूप कैसे बनता है और रूपान्तरण के उपरान्त पानी की कितनी बून्द कप में गिरती हैं। इसे वह घण्टों देखता रहता था। ऐसे बहुत-से खयालों में खोए हुए उसका स्कूली जीवन बीत गया।"

आगे चलकर जेम्स वॉट ने तकनीकी अध्ययन प्रारम्भ किया। वाष्पीकरण की ओर उसका ध्यान तब भी बना रहा और अन्त में उसने भाप से चलने वाले इंजन का निर्माण किया।

अभी तक जेम्स वॉट ने ऐसी कोई खोज नहीं की थी जिससे उसे विश्वभर में प्रसिद्धि मिल सके। वह उत्साही तो था ही, इसके साथ ही अनुसन्धान की क्रिया में प्रवीण भी था। किन्तु उसकी प्रवीणता अभी तक ऐसा कोई आविष्कार उत्पन्न नहीं कर पाई थी जिसमें

भाप का सम्पूर्ण इस्तेमाल हो सके।

यह सुबह-सुबह की बात है

एक दिन सुबह की बात है, जेम्स वॉट चर्च से लौट रहा था। उसने एक छोटा बॉयलर देखा जो भाप बना रहा था और उसके सहारे एक इंजन भी चल रहा था। इंजन छोटा था। बॉयलर से निकलने वाली अतिरिक्त वाष्प निरुपयोगी होकर निकली जा रही थी। तभी उसके मन में यह विचार आया कि वह एक ऐसा इंजन बनाए जिसमें सम्पूर्ण वाष्प का प्रयोग किया जा सके। अन्त में, अनेक प्रकार के प्रयोग करते हुए उसने एक ऐसा इंजन बना डाला जो सरलतापूर्वक चल सकता था और जिसमें भाप को स्थानान्तरित भी किया जा सकता था। आगे चलकर जेम्स वॉट ने ऐसे इंजन बनाए जो खुद भी चलते थे और अन्य यंत्रों को वाष्प की सहायता से चलाते भी थे।

जेम्स वॉट के इस प्रकार के इंजनों का प्रचलन बहुत तेज़ी-से फैला और मिल तथा कारखानों में ऐसे इंजनों से विभिन्न प्रकार के कार्य किए जाने लगे। उसने अन्त में एक और मशीन बनाई जिसका नाम 'वॉट कॉपिंग प्रेस' था। इन आविष्कारों का उपयोग औद्योगिक केन्द्रों में अत्यधिक हुआ। आज जितना भी औद्योगीकरण दिखलाई देता है, वह ऐसी मशीनों की ही बदौलत है। इन मशीनों की सहायता से मिलों और फैक्ट्रियों की उत्पादन क्षमता अत्यधिक बढ़ गई। विभिन्न तरह की औद्योगिक मशीनों के आविष्कार करते-करते जेम्स वॉट की आयु तिरासी वर्ष की हो गई और सन् 1819 में उसकी मृत्यु हो गई। किन्तु आज भी किसी भी इंजन को देखकर जेम्स वॉट की स्मृति हो आती है।

हरिशंकर परसाई (1924-1995): हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध व्यंगकार थे। व्यंग रचनाओं के अलावा उपन्यास और लेख भी लिखे। उनका जन्म जमानी, होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में हुआ था। वे हिन्दी के पहले रचनाकार हैं जिन्होंने व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाया और उसे हल्के-फुल्के मनोरंजन की परम्परागत परिधि से उबारकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। साहित्य अकादमी पुरस्कार, शिक्षा सम्मान (मध्य प्रदेश शासन), शरद जोशी सम्मान आदि से सम्मानित।

चित्र: हरमन: चित्रकार हैं। दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक और अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। भटिंडा, पंजाब में रहते हैं।

यह विज्ञान गल्प मित्र-बन्धु-कार्यालय, जबलपुर द्वारा सन् 1964 में प्रकाशित हरिशंकर परसाई की किताब *वैज्ञानिक कहानियाँ* से लिया गया है। यह किताब तैलंगाना क्षेत्र की ग्यारहवीं कक्षा के लिए नॉनडिटेल्ड प्रथम भाषा की पाठ्यपुस्तक के रूप में आन्ध्र प्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा दी गई स्वीकृति के तहत प्रकाशित की गई थी।

लोकतंत्र एवं वैज्ञानिक मानसिकता

भारतीय सन्दर्भ और व्याख्याएँ

हृदयकान्त दीवान

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 'अ' में मूल कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। इन कर्तव्यों में से एक बिन्दु में लिखा गया है – 'नागरिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें'। इनमें से वैज्ञानिक दृष्टिकोण का ज़िक्र देश के सभी प्रमुख शिक्षा सम्बन्धी दस्तावेज़ों में इसके महत्व को रेखांकित कर एक लक्ष्य के रूप में रखा गया है।

वैज्ञानिक मानसिकता पर विमर्श

सन् 1981 में नेहरू सेंटर, बम्बई के प्रांगण से वैज्ञानिक मानसिकता के अभाव पर चिन्ता जताते हुए कुछ वैज्ञानिकों व प्रशासकों द्वारा एक प्रपत्र जारी किया गया। इस प्रपत्र से मानो अध्येताओं का समूह दो हिस्सों में बँट गया। एक ओर आशीष नंदी, शिव विश्वनाथन, वंदना शिवा जैसे अध्येता थे, जो इस दस्तावेज़ को विज्ञान व वैज्ञानिक मानसिकता के अन्ध महिमागान के रूप में देख इसकी गहरी आलोचना कर रहे थे। दूसरी ओर इन आलोचनाओं के प्रत्युत्तर में व घोषणा पत्र के समर्थन में बहुत-से अन्य अध्येताओं ने बढ़-चढ़कर लिखा। हालाँकि, उनमें से भी कुछ ने इस दस्तावेज़ के कुछ पहलुओं, खास तौर पर अभिव्यक्ति के तरीके, से असहमति भी जताई किन्तु इसकी मूल भावना के महत्व को उन्होंने लोकतंत्र, न्याय व बराबरी हासिल करने की राह में अनिवार्य कदम माना। वैज्ञानिक मानसिकता क्या है, उसका विज्ञान व प्रोद्योगिकी से क्या कोई लेना-देना है, उसका सामाजिक व व्यक्तिगत नैतिक ढाँचे से क्या सम्बन्ध है, उसके संविधान की प्रस्तावना में शामिल किए जाने के लक्ष्य क्या-क्या हो सकते हैं, जैसे

कई महत्वपूर्ण सवाल आज भी हमारे सामने हैं। ये प्रश्न आज़ादी मिलने के समय भी बहस में थे और आज भी उतने ही मोजूँ हैं। इसलिए बहस व उससे जुड़े मसलों को समझना महत्वपूर्ण है।

नेहरू ने विज्ञान व इसके महत्व पर कई बार अपने विचार सबके सामने रखे। पुरुषोत्तम अग्रवाल ने हाल ही में प्रकाशित किताब *कौन है भारत माता* में 1950 में एक नई प्रयोगशाला के उद्घाटन के समय नेहरू द्वारा दिए भाषण को उद्धृत किया है। उसमें नेहरू ने जो कहा, उसका लब्बोलुआब यह है कि विज्ञान इमारतों व उपकरणों से नहीं इन्सानों से सम्बन्धित है। विज्ञान उद्योगों व व्यवसाय की नौकरानी नहीं है - वह उनकी मदद ज़रूर करता है किन्तु यह देश के लोगों के लिए बेहतर व अधिक मौके पैदा करने का काम है। वे यह भी कहते हैं कि विज्ञान का ध्येय प्रकृति से युद्ध नहीं वरन् उसे समझकर व उससे तालमेल बिठाकर, इन्सानियत के हक में प्रकृति का उपयोग करना है। उनके अनुसार विज्ञान लगातार परिवर्तनशील है व समाज को भी गति देता है। वह समाज के रूढ़िवादी, यथास्थिति व निरन्तरता-पोषक व्यवहार के साथ संघर्ष कर परिवर्तन लाता है। विज्ञान की मूल आत्मा में सबसे नए खोजे गए 'तथ्यपरक' 'मान्य सच' को स्वीकारना है। यानी एक लगातार परिवर्तन की प्रक्रिया जिसमें नई खोजों के आलोक में किसी भी सामाजिक या औद्योगिक या आर्थिक बनावट के बन्धनों को तोड़ा जा सकता है। इस मायने में नेहरू विज्ञान को सामाजिक, आर्थिक व तकनीकी परिवर्तन का इंजन मानते हैं।

नेहरू यह भी कहते हैं कि वैज्ञानिक भी अपने जीवन में विज्ञान के तरीकों, दृष्टिकोण व मूल आत्मा को नकारते हैं। नेहरू समाज की रीतियों की जड़ता व संकीर्णता पर चिन्ता जताते हुए कहते हैं कि संस्कृति असल में विचार और चेतना के विस्तार का नाम है। संस्कृति को इसके विपरीत अर्थ देकर इन्सान अथवा देश की चेतना के विकास को रोकना, इसका गलत अर्थ लगाना है[1]। इसी बात को भगत सिंह के नेहरू के बारे में वक्तव्य[2] में देखा जा सकता है। भगत सिंह ने नेहरू के उस वक्तव्य को रेखांकित किया है जिसमें उन्होंने युवाओं से न सिर्फ राजनैतिक बल्कि सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक क्षेत्रों में भी विद्रोह करने को कहा, यानी जो बात अपनी समझदारी की कसौटी पर सही न बैठे, उसे कुरान व वेदों के आधार पर सही नहीं मानें। नेहरू के वक्तव्य का सार यह है कि हर देश अपने आप को प्राचीन ज्ञान

[1] *अग्रवाल:2021, pp. 358-360.*

[2] *पृष्ठ 382-383.*

चित्र विकिपीडिया कॉमन्स से साभार।

नेशनल केमिकल लेबोरेट्री, पुणे में जवाहरलाल नेहरू।

का स्रोत व महान मानता है और वह हर देश के लिए सही भी है। परन्तु इस तरह के गौरव का खास फायदा नहीं है क्योंकि यथार्थ की दुनिया उस युग में नहीं लौट सकती। इसीलिए परिवर्तन व नई खोज ही आगे बढ़ने का रास्ता है।

हक्सर, रमन्ना व भार्गव 1981 के दस्तावेज़ में वैज्ञानिक मानसिकता की व्याख्या 'rational attitude' के रूप में करते हैं और उसे समाज के ऐसे पुनर्निर्माण की ताकत के लिए ज़रूरी मानते हैं जिसमें सभी लोगों की आकांक्षाएँ सम्मिलित हों। यह वही समझ है जो कमोबेश कोठारी आयोग की 1966 की रपट में दिखती है जिसमें विज्ञान की पढ़ाई को न सिर्फ विज्ञान व तकनीकी में इज़ाफे के लिए आवश्यक समझा गया है वरन समाज में रूढ़ियों व 'मृत' परम्परा को प्रमाण आधारित तार्किक समझ द्वारा चुनौती देने के लिए भी।

वैज्ञानिक मानसिकता को राष्ट्रीय व सामाजिक विकास व संविधान के न्याय, बराबरी व बन्धुत्व की ओर बढ़ने के रास्ते के रूप में रखने का यह प्रस्ताव बहुत आग्रहपूर्ण व सशक्त था। इस पर कई तरह के दृष्टिकोण से तीखी प्रतिक्रियाएँ हुईं। इससे एक बड़ी बहस शुरू हुई जिसने यह माना कि विज्ञान का यह गुण है कि वह समाज को सही दिशा दिखा सकता है; जबकि कई अध्येता इसे अन्याय, शोषण व उपनिवेशवाद की जड़ मान रहे थे। एक महत्वपूर्ण बहस इस बात पर थी कि क्या वैज्ञानिक मानसिकता की वृहद समझ व विज्ञान अपने आप में मूल्यों का एक ढाँचा समाहित करता है? क्या यह निरपेक्ष, सही व तार्किक रास्ता दिखा सकता है?

इस बहस को याद करना व

उसकी प्रमुख बातों पर विचार करना इस मसले को समझने के लिए उपयोगी होगा। जैसा कि ऊपर स्पष्ट है, विज्ञान में मूल्यों के ढाँचे को निहित मानने वाले इसकी सत्यता की कसौटी व हरेक के लिए प्रमाणों व तर्कों को प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता एवं आवश्यकता पर बल देते थे। वे कहते थे कि इन्सानों की हर मायने में बराबरी, एक-दूसरे की बात को व उसे कहने के ढंग को जगह देना और विचारों व समझ में अन्तर होने पर बेहतर विकल्प को ही चुनना व उस पर तार्किक रूप से सहमत हो पाना - खुलेपन व सहिष्णुता का आधार है। यह हमें प्रकृति के दोहन व शोषण से भी रोकेगा क्योंकि यह दोनों ही कार्य गैर-तार्किक हैं।

यह भी एक प्रश्न है कि क्या वैज्ञानिक मानसिकता का विकास व विज्ञान का लोकव्यापीकरण एक ही मायना रखते हैं? या फिर विज्ञान लोकव्यापीकरण कहने में ही यह निहित है कि हम किस विज्ञान की समझ व किस विज्ञान की बात कर रहे हैं। इन पर हम बाद में आएँगे। यह विज्ञान के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि इस बात में तो कोई शक नहीं कि विज्ञान हमारे ज्ञान व समझ का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। अपनी प्रकृति के कारण यह लगातार नया होता रहता है। इसलिए किसी भी बात के पक्ष में यह तर्क कि चूँकि यह वैज्ञानिक है इसलिए सही है, विज्ञान की मूल भावना के खिलाफ है। विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य इसके गुणों के आधार पर, इसके तरीके व सत्य की कसौटी को समझकर उनमें दक्षता हासिल करना है। इसीलिए विज्ञान को भी अपरीक्षणीय तथ्यों का भण्डार बनाकर अन्धविश्वास की श्रेणी में लाना अनुपयुक्त है। इसकी सीमा को ध्यान में रखकर इसके समकक्ष और कई बार इससे अधिक महत्व अन्य विषयों को दिया जाना चाहिए, जिसमें इन्सानी सम्बन्धों, बाज़ार व इन्सान के रिश्ते, सामाजिक संरचना व उसका संयोजन व संचालन, सत्ता, बराबरी, न्याय आदि के अर्थ व सन्दर्भ की तार्किक पड़ताल होनी चाहिए। हर विषय की अपनी सत्य की कसौटी है, बच्चों को इन कसौटियों की समझ व पड़ताल का तरीका आना उतना ही आवश्यक है जितना विज्ञान के सन्दर्भ में।

इस नज़र से देखें तो शिक्षा के अन्तर्गत विज्ञान व उसकी प्रकृति पर चर्चा न केवल विज्ञान की प्रकृति से जुड़ा मसला है बल्कि बच्चों की शिक्षा से भी जुड़ा मसला है। यदि हम विज्ञान की प्रकृति व बच्चों की शिक्षा के बारे में साथ-साथ सोचें तो हम देखते हैं कि इनकी अन्त:क्रिया की वजह से कई नए आयाम उभरकर सामने आते हैं। हर एक लोकतांत्रिक देश में मौकों की बराबरी, न्याय, विचारों का खुलापन, सहिष्णुता, करुणा व बहुलता (प्लूरैलिटी) की

आवश्यकता है। ये लोकतंत्र की नींव हैं व उसके स्वास्थ्य व निरन्तरता का आधार भी। विज्ञान के बारे में बहुत-से लोग कहते हैं कि यह विचारों की स्वतंत्रता, विविधता व खुलेपन का आधार है। विज्ञान की समझ व उससे बनी वैज्ञानिक मानसिकता सीखने वाले के नज़रिए पर असर डाल उसे व्यापक बनाती है। यह भी कहा जाता है कि खोज करने का और नए ज्ञान को स्वीकार करने का विज्ञान का तरीका अत्यन्त सुविचारित है। इसे बाकी सभी विषयों, सामान्य जीवन व नीतिगत मसलों आदि पर लागू करने से, इन सभी मसलों पर भी सशक्त रूप से विचार हो सकता है। यह गहराई से सोचने का एक आधार देता है। ऐसा भी कहा गया है कि विज्ञान अपने-आप में मूल्यों का भी एक ढाँचा है। यह सही-गलत पहचानने का भी आधार दे सकता है। वैज्ञानिक मानसिकता के अहम पहलुओं में तार्किकता व विचारों को तर्क की कसौटी पर आँकना प्रमुख रूप से शामिल है। पर हम देखेंगे कि ये बातें अर्द्धसत्य ही हैं - न ही ये गलत हैं और न ही पूर्ण रूप से सही। और इसलिए इन विचारों, शिक्षा के स्वरूप और उसमें विज्ञान की जगह और उसके विशिष्ट महत्व पर विमर्श करना महत्वपूर्ण है।

विज्ञान और आस्था के बीच द्वन्द्व

भारत के सन्दर्भ में (बाकि देशों में भी तुल्य पहलू मिलेंगे) विज्ञान व वैज्ञानिक मानसिकता ने कई प्रमुख मान्यताओं व परम्पराओं को बदलने में मदद की है। विज्ञान की अवधारणाओं ने सभी लोगों की बराबरी को तार्किक सबूतों के साथ उजागर किया और सामाजिक खामियों को बदलकर विचारों व परम्पराओं को खुलने में मदद की। विज्ञान की समझ को लोगों तक ले जाने के लिए बीसवीं सदी के आखरी दो दशकों में विज्ञान लोकप्रियकरण व लोकव्यापीकरण के प्रयासों की संख्या में बहुत इज़ाफा हुआ। बाबाओं द्वारा दी जाने वाली भभूतियों या दहकते अंगारों पर चलने के प्रदर्शन जैसे कई तरह के कार्यों को आम लोगों को करके दिखाया गया व लोगों को इनमें भागीदारी के मौके भी दिए गए। इनमें से बहुत सारे प्रयासों में उनके पीछे छिपे विज्ञान को भी समझाने का प्रयास किया गया। गाँव-गाँव में विज्ञान के प्रयोग, विज्ञान आधारित नाटक, विज्ञान की उपलब्धियों के गुणगान आदि के ज़रिए इन सब तथाकथित व पुरातन रूढ़िवादी मान्यताओं के खिलाफ प्रचार किया गया। इसके लिए प्रदर्शनियाँ भी आयोजित की गईं व प्रदर्शन भी।

इस सबके बीच या उसकी प्रतिक्रिया के बीच गणेश की मूर्तियों के दूध पीने की खबर को लेकर आनन-फानन में लाखों लीटर दूध

आग पर चलती हुई एक महिला।

नालियों में बहा दिया गया। धर्म में आस्था को स्थापित करने वाले सभी लोग व संस्थाएँ इसमें सक्रिय थे। इस दौर में दोनों तरफ से ज़ोरदार प्रयास हुए और भरपूर प्रयास के बावजूद विज्ञान की समझ फैलाने का प्रयास कर रहे जत्थे ज़्यादातर लोगों के मन से गणेश की मूर्ति के दूध पीने की घटना निकाल नहीं पाए। भभूति व अन्य किस्सों के समान ही, यहाँ भी गणेश की मूर्ति में दूध नहीं जा रहा, यह प्रत्यक्ष देखकर भी आम लोगों द्वारा यह मानना मुश्किल था। उन्हें यही लगता था कि शायद यहाँ तो दूध गणेश जी के शरीर में नहीं जा रहा, किन्तु गणेश की कुछ अन्य मूर्तियों ने तो ज़रूर दूध पिया ही है। उनके लिए प्रत्यक्ष को नकारना तो मुश्किल था, किन्तु भावनात्मक आस्था व विश्वास के कारण यह स्वीकारना भी मुश्किल था कि किसी भी मूर्ति ने दूध नहीं पिया होगा। मूर्ति दूध नहीं पिये, यह हो ही नहीं सकता।

विज्ञान के विचार को फैलाने के प्रयासों को चुनौती देने के लिए कई ऐसे और भी मसले व परिस्थितियाँ गढ़ी गईं जिनमें विज्ञान के सामने दैवीय शक्ति और चमत्कारों के कथित उदाहरणों से सुदृढ़ की गई विश्वास की चुनौती बार-बार लाई गई। इसी तरह समाज व अर्थव्यवस्था के सत्ता समीकरणों को बरकरार रखने के लिए भी धर्म व जाति के अस्तित्व को ज्यों-का-त्यों रखते हुए यथास्थिति बनाए रखने का प्रयास भी लगातार हो रहा है। समूहों के बीच गैर-वैज्ञानिक व गैर-तार्किक कारणों से वैमनस्य पैदा कर उसके आधार पर वोट की राजनीति चलाना, उसका एक लक्ष्य है। लोगों में विवेक के निर्माण के लिए अवसर बनाने के प्रयास के साथ-ही-साथ उसकी विपरीत दिशा में पुरातन सोच

गणेश की मूर्तियों को दूध पिलाने के दौरान लाखों लीटर दूध इस्तेमाल किया गया।

आधारित मिथकों को आडम्बर सहित यथार्थ की तरह घर-घर लोगों तक ले जाने का काम विभिन्न माध्यमों से कई-कई बार हुआ। मिथकों व काल्पनिक गाथाओं को भावनात्मक रूप से उद्वेलित करने हेतु कई ऐतिहासिक अर्धसत्यों व असत्यों को भी गाथाओं व नाटकों के रूप में प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया। इनमें कई बार प्रत्यक्ष रूप से, किन्तु परोक्ष रूप से लगभग हर बार उन मूल्यों को व उन विचारों पर ज़ोर दिया गया जिनमें इन्सानी बराबरी व बन्धुत्व की भावना का धता बताते हुए वैमनस्य को घोलने की मंशा दिखती है।

स्वतंत्रता के समय व उससे पहले से ही बन्धुत्व व तार्किक सोच के विकास से रूढ़ियों व गुलामी की प्रवृति से आज़ादी पाने के लक्ष्य की ओर बढ़ने के रास्ते में हमेशा से ही संघर्ष रहा है। एक ओर तो टैक्नोलॉजी व उसके साथ कुछ हद तक जुड़े अन्धाधुन्ध अनियंत्रित विकास से जोड़कर आज की हर प्रकार की तकनीकों/प्रोद्योगिकीय विकास के सभी दोषों को विज्ञान पर मढ़ दिया गया, और दूसरी ओर उसकी तार्किकता की माँग को विश्वास विरोधी बताकर धर्म के बरक्स खड़ा कर दिया गया। ज़ाहिर है कि इन दोनों ही प्रयासों में विज्ञान व उसकी समझ के बहुत-से महत्वपूर्ण पहलुओं को नज़रअन्दाज कर दिया गया।

विज्ञान और बाज़ार के बीच द्वन्द्व

इसी तरह का दोतरफा आक्रमण बाज़ारी ताकतों की ओर से भी हुआ। एक तो विज्ञान की भाषा व वैज्ञानिकों के लिबास में व्यक्तियों द्वारा या फिर

वैज्ञानिकों के हवाले से कुछ उत्पादनों को प्रमोट करने का प्रयास था। जैसे कोई विज्ञापन कहता है कि वैज्ञानिक ढंग से जाँच की गई है कि यह पदार्थ दूध की शक्ति बढ़ाता है। इसके बाद और कुछ विवरण नहीं दिया जाता कि इस कथन का आधार क्या है और इसे कैसे परखा गया है। यह भी स्पष्ट नहीं है कि दूध की शक्ति का अर्थ क्या है और उसके कौन-से हिस्से में बढ़ोत्तरी होती है, वह बच्चों के लिए लाभदायक क्यों है आदि। यह भी स्पष्ट नहीं होता है कि इस परीक्षण को आखिर वैज्ञानिकों ने किया ही क्यों और इसके लिए पैसा कहाँ से मिला। इस शोध पर निवेश करने वाले की इसमें क्या रुचि है?

इसके अलावा भी बहुत-से विज्ञापन हैं जिन्हें समझना होगा, जैसे किसी खास उत्पाद के उपयोग से ज़्यादा प्रभावी सफाई होती है; किसी पदार्थ के सेवन से ज़्यादा दिमागी शक्ति आती है आदि। इसी तरह यूरिया, पेस्टिसाइड, डिटरजेंट व अन्य रासायनिक उत्पादनों के अन्धाधुन्ध उपयोग को बिना यह बताए प्रोत्साहित किया गया कि इनसे पर्यावरण को हानि हो सकती है। इसी तरह यह प्रचार कि यह साबुन, यह टूथपेस्ट, यह डिटरजेंट अच्छा है क्योंकि यह वैज्ञानिक विशेषज्ञों द्वारा अथवा परीक्षणों द्वारा प्रमाणित है। यह नहीं बताते कि परीक्षण क्या थे; वे कैसे हुए; कुल मिलाकर विज्ञान के नाम का उपयोग मात्र कुछ खास उत्पादों को प्रमोट करने के लिए होता है। इसमें एक ओर तो आर्थिक हित है, दूसरी ओर सामाजिक व राजनैतिक। इसका सबसे ताज़ा उदाहरण है, एक वैज्ञानिक संस्थान को यह खोजने के लिए अनुदान देना कि किसी शब्द समूह के बार-बार उच्चारण से बीमारी पर असर पड़ता है।

विज्ञान की समझ को भ्रमित करने का यह सबसे नया प्रयास राज्य सत्ता व उसके अनुदान की मदद से देश के प्रमुख विज्ञान व टैक्नोलॉजी संस्थानों में से एक में होगा। जन टैक्नोलॉजी के बहुत महत्वपूर्ण शोध मुद्दों को इसमें पूर्णत: नज़रअन्दाज़ किया गया है। एक ओर तो विज्ञान के विकास के लिए लाज़मी शोधों के लिए राशि का अभाव है और दूसरी ओर इस तरह के गैर-वैज्ञानिक शोध के लिए अनुदान उपलब्ध होना हास्यास्पद भी है और रुला देने वाला भी। विज्ञान की समझ व दायरे को भी इसमें भुला दिया गया है। हाल के वर्षों में विज्ञान पर इस तरह के आक्रमण लगातार बढ़ते जा रहे हैं। दूसरी ओर, विज्ञान को पश्चिमी, बाहरी और संस्कृति व धर्म के खिलाफ बताते हुए कई अन्य तरह के भ्रम फैलाने का कार्य अनवरत चलता रहा है। हाल में नए-नए बने मण्डी स्थित IIT के डायरेक्टर ने बुरी शक्तियों की बात कर, उस प्रयास को आगे बढ़ाया जिसके तहत

ज्योतिषशास्त्र, भारतीय मिथकों जिनमें गौ वंश के गुणों को स्थापित करना, हवन से हवा की शुद्धता में बढ़ोतरी दिखाना व ऐसे अन्य कार्य भी विज्ञान माने जाएँगे व शोध के लिए अनुदान पा सकेंगे। ज़ाहिर है कि विज्ञान पर हो रहे आवश्यक कार्यों को छोड़कर इस तरह के मसलों पर अनुदान के मार्फत शोध करवाने का कोई भी आधार स्पष्ट नहीं है। फिर भी विज्ञान व टेक्नोलॉजी के संस्थान के प्रमुख के रूप में संचालक महोदय का कथन यह स्पष्ट दिखाता है कि आज चुने जा रहे वरिष्ठ विद्धत जनों की समझ का झुकाव किस ओर है।

विज्ञान की प्रकृति की समझ और दार्शनिक आधारों को चुनौती

एक ओर तो विज्ञान के अर्थ, उसके आधार, उसके मायने व उसकी समझ पर आक्रमण है। इस आक्रमण में उसकी प्रामाणिक बातें बताने की ताकत को छद्म ढंग से स्वीकारते हुए वास्तव में उसकी तार्किकता व दार्शनिक आधार को ही चुनौती दी जा रही है, जिससे उसके स्वरूप व उसमें शामिल सोच व समझ के ढंग को विकृत कर उसका आधार बदल दिया जाए। दूसरी ओर, उसे नुकसानदेह व दम्भी बताकर आस्था से विस्थापित करने का प्रयास है। यानी यह आग्रह कि विज्ञान, उसके तरीके व तर्क को ज्ञान की सत्यता जाँचने का आधार बनाना ही दोषपूर्ण है। आस्था व भावना के महत्व को दरकिनार कर विज्ञान व तर्क को सत्य का, अथवा ज्ञान का आधार मानना गलत है।

यह स्थापित करने का प्रयास भी है कि विज्ञान ऐसा कुछ नहीं बताता जो पहले से ही ज्ञात नहीं था। आजकल तो हर दिन धार्मिक ग्रन्थों व मिथक कहानियों अथवा गाथाओं के कथनों का कुछ नया विवेचन आ जाता है। इस विवेचन की कोशिश यह दिखाना है कि इनमें आधुनिक विज्ञान व अन्य ज्ञान (हाल में प्राप्त समझ व जानकारी) पहले से ही शामिल था। यानी विज्ञान ने इतने सारे लोगों के द्वारा किए गए विभिन्न तरह के शोधों के लम्बे प्रयास से जो हासिल किया, वह तो पहले से ही धर्म सम्बन्धी कथनों में देखा जा सकता है। हर प्रकार के स्पष्टतः दकियानूसी रीति-रिवाज़ के लिए भी गैर-तार्किक सम्बन्ध जोड़कर यह कहा जाता है कि न सिर्फ उक्त रिवाज़ उचित हैं बल्कि आज के ज्ञान में भी पाए जाते हैं। इसके साथ जुड़ा यह दावा भी है कि यह ज्ञान रिवाज़ के मान्य बनाए जाने के समय भी था। अतीत की मान्यताओं में लौटने का ऐसा प्रयास जो विज्ञान द्वारा हासिल की गई समझ को उलटकर प्रस्तुत करे। उदाहरणतः हिन्दू रिवाज़ों के सन्दर्भ में दबे स्वर में यह भी कहा जा रहा है कि कोरोना की सावधानियाँ जैसे छूना नहीं, दो

गज़ दूरी और मास्क पहनना कुछ और नहीं है, बस छुआछूत व मुँहपट्टी हैं। इसलिए हमें छुआछूत को गलत नहीं कहना चाहिए - उसकी भावना को जायज़ मान सकते हैं और कोरोना से बचने का यह सब ज्ञान उस समय पता था। इसमें यह भी कह दिया जाता है कि जो छुआछूत का बाद का रूप बना, वह विकृत था। किन्तु सही रूप क्या है, विकृति क्या है - यह सब अधूरा छोड़ दिया जाता है।

इस सबसे विज्ञान के समाज के साथ रिश्ते के प्रश्न ही नहीं, खुद विज्ञान क्या है, ये प्रश्न भी उलझ जाते हैं। इसमें हम बीसवीं सदी की वैज्ञानिक मानसिकता दस्तावेज़ के इर्द-गिर्द हुई वैचारिक बहस ही नहीं वरन् सतरहवीं शताब्दी से शुरू हुई विज्ञान की दार्शनिक परिभाषा की विकास यात्रा पर भी प्रश्न चिह्न लगाकर, उसे बहस के दायरे में ले आते हैं। विज्ञान को दम्भी व अपने आपको ही सही समझने वाला तर्क भी इसी प्रयास का हिस्सा है। उसमें विज्ञान को ज्ञान और सोच के अनेकों रास्तों में से एक के रूप में प्रस्तुत कर, उसके पदार्थवादी चरित्र व यथार्थ में प्रस्तुत हो पाने वाले प्रमाणों व तार्किकता को संकीर्ण बताकर नकारना शामिल है। उसकी अपनी अनिश्चितता व परिवर्तनशीलता की स्वीकार्यता को उसकी कमज़ोरी बताकर, अप्रमाणित आस्था को धन और बल के ज़ोर पर बार-बार प्रसारित कर, सत्य के रूप में स्थापित करने की मुहिम तेज़ होती गई है।

कैसे करें इस चुनौती का सामना?

कुल मिलाकर यह विज्ञान के अर्थ को बदलकर उसको गैर-वैज्ञानिक सोच के लिए इस्तेमाल करने की कोशिश और उस पर बुनियादी प्रश्न पूछकर व उसके सिद्धान्तों को तोड़मरोड़ कर उनका मज़ाक उड़ाने का प्रयास पुरातन सोच व आध्यात्मवादी सोच में लौटने का प्रयास है। ये ज्ञान के अस्तित्व के लिए तो खतरनाक हैं ही परन्तु साथ ही, इन्सानी सभ्यता द्वारा हासिल किए गए न्याय, मौकों में समकक्षता व बन्धुत्व के आधार को भी चुनौती देते हैं। संस्कार, आस्था, पुरातन अथवा सनातन संस्कृति का अर्थ व उसमें गौरव, आदि सभी पहलू सामाजिक व्यवहार के नियमों, जिसमें ढाँचे की रचना व संचालन शामिल है, उसको प्रभावित करते हैं। अलग-अलग व्यक्तियों, परिवारों व समाजों की आर्थिक परिस्थितियों में अप्रत्याशित विषमता, असीमित विलासिता व आर्थिक प्रभुता से लेकर भुखमरी व पूर्ण गुलामी तक की स्थिति में बँटवारा हरेक को यथास्थिति से असन्तोष तो देता है, किन्तु साथ ही, केवल अपने विकास के बारे में सोचने की मृगमरीचिका में उलझा देता है। सामाजिक विषमता की श्रेणी में

ज़्यादातर लोग नीचे वाले पायदान पर ही हैं, वहीं रहे हैं और आगे भी वहीं रहेंगे, अथवा और नीचे जाएँगे। उनकी आगे बढ़ने व सक्षम होने की सम्भावना लगभग नगण्य है। इसीलिए विज्ञान व टैक्नोलॉजी के अर्थ, उपयोग व इनके ज्ञान के मायने क्या हैं जैसे मुद्दों का दार्शनिक विवेचन और इनपर बातचीत बहुत आवश्यक है। बगैर इन पर सोचे, पुरातन को अच्छा बताना या गैर-ऐतिहासिक ढंग से और गैर-तार्किक विवेचनों द्वारा उसे सही ज्ञान का जामा पहनाने के प्रयास का प्रतिरोध करना मुश्किल होगा। इसलिए तार्किक ढंग से इन पहलुओं को समझना आवश्यक है।

इसके साथ ही, यह समझना भी ज़रूरी है कि विज्ञान हर मसले का हल नहीं हो सकता। वह किन-किन क्षेत्रों, किन मसलों को व उनमें किस तरह के और कौन-से प्रश्नों की जाँच की जानी चाहिए, यह तय करने का आधार नहीं देता। वह किसी भी किस्म के प्रश्नों को रोकता नहीं और कुछ प्रश्नों को ज़्यादा प्राथमिकता का दर्जा नहीं देता। जहाँ बीमारी का कारण खोजने से, बीमारी रोकने के तरीकों को खोजने का प्रयास हो सकता है, वहीं उसी से बीमारी फैलाने के तरीके ढूँढ़ने का भी प्रयास हो सकता है। प्रकृति के कार्य करने के ढंग को समझने का प्रयास अपने आप में इन्सानी जिज्ञासा को आगे बढ़ाने के लिए उपयोगी हो सकता है, किन्तु इस शोध के लिए आवश्यक संसाधन व राशि कहाँ से उपलब्ध होंगे? और अगर होंगे तो किन प्रयोजनों से और किन शर्तों पर?

स्पष्ट है कि यह मानना कि विज्ञान सही ही कहता है व वैज्ञानिक सब कुछ सही-सही और सोच-समझकर ही बताते हैं, यह भी एक खोखला

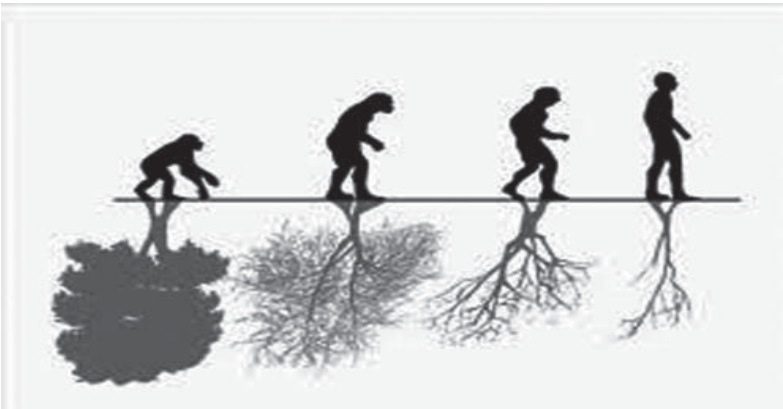

मनुष्य और प्रकृति का आपसी रिश्ता फायदेमन्द होने के साथ-साथ नुकसानदायक भी होता है।

दावा है। अधिक-से-अधिक इसे अर्द्धसत्य कहा जा सकता है। ऐसा कथन कि यह "विज्ञान द्वारा जाँचा गया है और वैज्ञानिक ढंग से खोजा गया है" भी सम्पूर्ण जानकारी नहीं है। इसमें जाँचने वालों व जाँच करवाने वालों के ध्येय का वर्णन नहीं है। जैसा हमने देखा, यह ध्येय विज्ञान निरपेक्ष रूप से, सही तरह से स्वयं निर्धारित नहीं कर सकता।

विज्ञान भी सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक ताकतों की गिरफ्त में है। वह इनसे निकलने का औज़ार तभी बन सकता है यदि उसे सही ढंग से समझा व उपयोग किया जाए। नकारा नहीं जा सकता कि विज्ञान हमें अपनी समझ को जाँचने, परखने व आगे बढ़ाने का पुख्ता आधार देता है। इसके कार्य का तरीका हमें दुविधायुक्त प्रश्नों को परखने का रास्ता दिखाता है। यह सही है कि विज्ञान हमें चुनने का पूरा आधार नहीं देता और न ही हमें इन्हें देखने के सम्पूर्ण व सही नज़रिए के लिए बाध्य करता है। किन्तु फिर भी यह हमें इन्हें जाँचने की प्रक्रिया सुझाता है। यह, अगर हम चाहें तो, हमारी मान्यताओं को जाँचने का भी तरीका दे सकता है किन्तु इसके परिणामों को आधार मानकर लोग अपनी मान्यताएँ बदल लें, ऐसा ज़रूरी नहीं है। कई बार लोग बदली मान्यताओं पर चलते-चलते वापस लौटने का निर्णय भी लेते हैं।

विज्ञान किसी सीमित ज्ञान का, हर समय सही ही रहने वाला पुलिन्दा नहीं है। इसके स्वभाव में भी सशंकितता निहित है। यानी जहाँ जाँच-परखकर बात रखने का दावा है, वहीं यह भी साथ-साथ स्पष्ट है कि यह सब पुन: जाँचा जा सकता है और सर्वथा सत्य नहीं रह सकता। विज्ञान के इसी गुण के कारण सभी विज्ञान करने वाले व्यक्ति एक मायने में बराबर हैं। कथन, परिकल्पना अथवा थ्योरी की जाँच इस आधार पर नहीं होनी है कि उसे कहने वाला कौन है। बल्कि इस आधार पर होनी है कि कही जा रही बात के पीछे क्या प्रमाण हैं और उसके लिए कौन-से तर्क दिए जा रहे हैं। विज्ञान की प्रकृति में व्यक्ति व पद निरपेक्षता, बराबरी, खुले विमर्श, तर्क व प्रमाण का महत्व आदि मौजूद हैं। लोकतंत्र के अहम पहलुओं में ये सभी शामिल हैं। लेकिन इस खुलेपन का गलत इस्तेमाल कर लोकतंत्र में बराबरी व खुले विमर्श के आधारों पर ही प्रश्न चिह्न लगाने का संगठित प्रयास हो रहा है। इसीलिए संविधान की प्रस्तावना में वैज्ञानिक मानसिकता के विकास का स्पष्ट उल्लेख जोड़ा गया है। हालाँकि, कई लोग यह भी कहते हैं कि यह संविधान की प्रस्तावना में व्यक्त विचारों में पहले से ही शामिल है।

* * *

इसका अर्थ यह है कि विज्ञान

सीखना इसलिए फायदेमन्द है क्योंकि यह हमें संवाद करना व प्रमाणों पर विश्वास करना सिखाता है। यह प्रकृति व जीवन के बहुत-से पहलुओं के बारे में बता सकता है। यह हमें अपने आपसी व प्रकृति के साथ के सम्बन्धों को समझना सिखा सकता है। किन्तु इसके लिए सही मसले व पहलू चुनना होंगे। यह माना जा सकता है कि विज्ञान का एक बड़ा हिस्सा प्रकृति के बारे में इन्सानी जिज्ञासा से भी बना है। इसके साथ-साथ स्वार्थों के लिए की गई खोज से भी बहुत-सी ऐसी बातें मिली हैं, जो हमें प्रकृति को समझने व सराहने में मदद करती हैं। किन्तु न तो यह सर्वथा सत्य है और न ही पूर्णत: मूल्यों का आधार। हालाँकि, यह हमें प्रमाणों पर व तर्क पर विश्वास करना सिखाकर ढकोसलों से बचा भी सकता है, किन्तु यह ऐसा तभी कर सकेगा जब हम इसे इजाज़त दें। मूल्यों का ढाँचा बनाने के लिए इसके साथ सामाजिक बराबरी, न्याय, संरक्षण, करुणा, सहयोग, सहिष्णुता, हमदर्दी आदि मूल्यों को शामिल करना होगा। ये मूल्य हमें विज्ञान से नहीं मिलते, बल्कि मानविकी, साहित्य व सामाजिक अध्ययन से मिल सकते हैं। परन्तु इसके लिए भी उपयुक्त शिक्षा व शिक्षण का ढाँचा, और सबसे महत्वपूर्ण, शिक्षक को इसका एहसास व समझ होनी चाहिए।

हृदयकान्त दीवान: *एकलव्य* का गठन करने वाले समूह के सदस्य। होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम से सम्बद्ध रहे। वर्तमान में *अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन* की पहल 'अनुवाद सम्पदा' का नेतृत्व कर रहे हैं।

सभी चित्र इंटरनेट से साभार।

सन्दर्भ:

- अग्रवाल, पुरुषोत्तम, श्रीवास्तव, अशोक एवं अन्य (1981). मेनस्ट्रीम (13-14), अगस्त 29, दिल्ली
- अग्रवाल, पुरुषोत्तम (2021). *कौन है भारत माता?* राजकमल पेपर बैक्स, दिल्ली
- हक्सर, पी. एन., रमन्ना, राजा, भार्गव, पी. एम एवं अन्य (1981). *ए स्टेटमेंट ऑन साइंटिफिक टेम्पर.* मेनस्ट्रीम (6-10), जुलाई 25, दिल्ली
- नंदी, आशीष (1981). *काउंटर स्टेटमेंट ऑन ह्युमनिस्टिक टेम्पर.* मेनस्ट्रीम (6-18), अक्टूबर 10, दिल्ली
- राजन, रवि (2005). *साइंस, स्टेट एण्ड वायलेंस.* रिसर्च गेट की साईट पर 24.03.2021 को देखा https://www.researchgate.net/publication/228916686_Science_state_and_violence_An_indian_critique_reconsidered
- शिवा, वंदना (1981). *मिथ ऑफ़ साइंटिफिक मेथड.* मेनस्ट्रीम (9-10), दिसम्बर 19, दिल्ली
- विस्वनाथन, एस. (1988). *ऑन दी अन्नाल्स ऑफ़ दी लेबोरेटरी स्टेट.* नंदी, आशीष (सम्पादक) की किताब साइंस, हेजेमनी एंड वायलेंस में. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 24.03.2021 को देखा: https://web.archive.org/web/20151124071502/http://www.ces.fe.uc.pt:80/emancipa/cv/gen/shiv.html

Nature-Society Series

Jharkhand

Price: ₹80

A collection of innovative maps by Yemuna Sunny, critical geographer and teacher, this series is an asset to geography classrooms, libraries, and teacher educational institutions, among others. Using beautiful, distinct icons, these maps clearly mark the physical spaces while conveying the type of human interactions with nature in each of them. The accompanying booklets provide information on the regions including their history, geographical features, environment, people, and intersections of each of these.

Practising and aspiring teachers, educators, learners of all ages, geographers, ecologists, and especially you, our dear reader, would enjoy learning about Jharkhand's unique ecology through this edition. It's a promise.

एकलव्य

To place the order -

Phone: +91 755 297 7770-71-72; Email: pitara@eklavya.in

www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

पढ़ना सीखने के दौरान सटीक अनुमान लगाने का महत्व और इसका विकास

मीनू पालीवाल

प्राथमिक शिक्षा पर नीतिगत ज़ोर और अकादमिक हल्कों में गहन विमर्श के बावजूद शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे कार्यकर्ताओं का अनुभव है कि देश में प्राथमिक शिक्षा कई स्तरों पर उपेक्षित है, परिणाम स्वरूप अनेकों समस्याओं से जूझ रही है। उदाहरण के तौर पर, देश के अधिकतर बच्चे सालों तक स्कूल में रहकर भी पढ़ना-लिखना नहीं सीख पाते। आम तौर पर शुरुआती कक्षाओं में पढ़ना सीखने को इस तरह के आसान सीढ़ीनुमा कौशल के तौर पर देखा जाता है:

अक्षर → बिना मात्रा वाले शब्द → मात्रा वाले शब्द → वाक्य → अनुच्छेद

जब भी कोई बच्चा पढ़ता है, वो ऐसे कई संकेत देता है, जैसे लिखे हुए शब्द की जगह कोई और शब्द पढ़ना, जिससे यह साफ ज़ाहिर होता है कि पढ़ना केवल सीढ़ीनुमा प्रक्रिया नहीं है। लेकिन चिन्ता का विषय यह है कि अक्सर इन संकेतों को हम अनदेखा कर देते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि हम बच्चों में पढ़ने के कौशल की संज्ञानात्मक विकास प्रक्रिया का सही-सही अवलोकन और व्याख्या नहीं कर पाते। संज्ञानात्मक प्रक्रिया से आशय उस अर्थ से है जो बच्चे पढ़ने की प्रक्रिया में निर्मित

फोटो: मीनू पालीवाल

चित्र-1

करते हैं। बच्चों के पढ़ने के तरीके पर खुद के कुछ अवलोकन और शिक्षकों के साथ बातचीत के आधार पर मैंने पाया है कि पढ़ना सिर्फ अक्षर-मात्रा जोड़ना नहीं है, बल्कि पढ़ने की प्रक्रिया में बहुत सारे तत्व शामिल होते हैं, जैसे अनुमान लगाना, पूर्वज्ञान का उपयोग करना इत्यादि; और इन्हें समझने के लिए हमें सजग अवलोकन और अध्ययन की आवश्यकता है। यहाँ इसी विषय पर मैं अपने कुछ अनुभव साझा कर रही हूँ।

पढ़ने की प्रक्रिया को समझना

चित्र-1 कक्षा तीन, मध्य प्रदेश बोर्ड की पर्यावरण की पाठ्यपुस्तक के एक पाठ का है। इस पाठ को मैंने अलग-अलग बच्चों को पढ़ने के लिए कहा और उनके पढ़ने में जहाँ-जहाँ जो-जो समस्याएँ दिखीं, उन्हें दर्ज करती गई। चित्र में आप मेरी टिप्पणियाँ भी देख सकते हैं। अधिकांश बच्चों में इस प्रकार की दिक्कतों को दर्ज किया गया। आइए, इन टिप्पणियों की

सहायता से बच्चों के पढ़ने की प्रक्रिया को गहराई से समझने की कोशिश करते हैं।

इस पन्ने पर आपको दो अनुच्छेद दिखाई दे रहे होंगे। दोनों पैराग्राफ एक ही बच्चे ने पढ़े हैं। पहले अनुच्छेद में आपको काफी कम गलतियाँ दिख रही होंगी जबकी दूसरे में काफी सारी गलतियाँ हैं। अब प्रश्न यह है कि पढ़ना यदि अक्षर-मात्रा पहचानना है तो दोनों अनुच्छेदों को पढ़ने में इतना अन्तर क्यों आया?

शिक्षकों से बातचीत में यह उभरकर आया कि दूसरा पैरा कठिन है। मैंने उनसे इसकी कठिनाई बताने को कहा। एक शिक्षिका ने 'बादाम के छिलकों से पोस्टर', 'लकड़ी के बुरादे से रंगोली बनाई' को चिह्नित किया। मैंने पूछा कि "क्या 'बादाम के छिलकों से पोस्टर' पढ़ना कठिन है?" शिक्षिका ने उत्तर दिया, "नहीं।"

आम तौर पर आधा अक्षर, लम्बे शब्द, रेफ वाले शब्द आदि को पढ़ने के लिए कठिन समझा जाता है। फिर इसे पढ़ने में बच्चे को परेशानी क्यों हुई? शिक्षिका ने जवाब दिया कि "हमारे क्षेत्र में सजावट के लिए बादाम के छिलकों का पोस्टर नहीं बनाते।" इसका मतलब पढ़ने में अक्षर-मात्रा के अलावा, पढ़ी जाने वाली विषय-वस्तु भी मायने रखती है।

मैंने बहुत-से शिक्षकों से इस पाठ पर बातचीत की है। इसमें मेरा उद्देश्य शिक्षकों के सामने इस बात के लिए तर्क प्रस्तुत करना होता था कि पढ़ना केवल अक्षर-मात्रा जोड़ना नहीं होता और हम बच्चों के पढ़ने में जो परेशानियाँ देख रहे हैं, यह पढ़ने के बारे में हमारे दृष्टिकोण और सीखने-सिखाने के तौर-तरीकों से काफी हद तक जुड़ा हुआ है। पढ़ना सीखने के दौरान बच्चे कुछ महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं से होकर गुज़रते हैं। इनमें से एक ज़रूरी और महत्वपूर्ण चीज़ है, अनुमान लगाना।

अक्सर देखने में आया है कि हम अनुमान लगाने को या तो एकदम निरुत्साहित करते हैं या फिर इसे कुछ खास महत्व नहीं देते। शायद शिक्षक यह नहीं समझ पाते कि अनुमान का पढ़ना सीखने में कितना अहम योगदान होता है। जब भी बच्चा लिखे हुए शब्द की जगह कोई और शब्द पढ़ देता है तो हम तुरन्त उसे टोकते हैं। हमें शायद यह सोचने की ज़रूरत है कि आखिर बच्चे ऐसा करते क्यूँ हैं। शायद हम इसलिए तुरन्त सुधार करवा देते हैं क्योंकि हमें लगता है कि बच्चे ध्यान से नहीं पढ़ रहे हैं। दूसरा कारण यह मान्यता हो सकती है कि टोकेंगे नहीं तो बच्चे आगे भी गलतियाँ करते रहेंगे। इन धारणाओं के चलते हमें बच्चों के पढ़ने में अनुमान की भूमिका के प्रति अत्यन्त सजग होने की ज़रूरत है।

अनुमान लगाना - पढ़ने की कुंजी

अनुमान लगाने को हम पढ़ना

सीखने की कुंजी कह सकते हैं। आइए, अनुमान को एक उदाहरण से समझते हैं:

लिखा था – दूध पहुँचाकर देहाती मज़े से रहता था।

पढ़ा गया – दूध बेचकर देहाती मज़े से रहता था।

यहाँ शब्द बदल जाने के बावजूद अर्थ का अनर्थ नहीं हुआ है। इस पर विचार करना स्वाभाविक होगा कि जो शब्द लिखा नहीं है, वह एक बच्चे द्वारा क्यों पढ़ा गया। बच्चे ने कैसे निर्णय लिया कि यही शब्द उपयोग में लाना है? क्या यह मात्र संयोग है? मुझे लगता है कि यह संयोग नहीं हो सकता क्योंकि पूरे वाक्य को यदि पढ़ें तो अर्थ बनता है। जब हम बच्चों को इस तरह से और भी शब्दों को बदलते देखते हैं तो यह बात समझ आती है कि बच्चे अनुमान लगाते हुए पढ़ते हैं। ऐसे अवलोकन से शिक्षक यह जान सकते हैं कि बच्चे द्वारा पढ़ी जा रही विषय-वस्तु उसे समझ भी आ रही है या नहीं। यह भी कहा जा सकता है कि जिस विषयवस्तु में हम बिलकुल भी अनुमान नहीं लगा पाते, वह हमें समझ ही नहीं आ रही होती है। आप स्वयं इस बात को अनुभव कर सकते हैं। यदि आप स्टॉक मार्केट के बारे में कम जानते हैं तो अखबार में स्टॉक मार्केट वाला पन्ना खोलिए और पढ़िए। आप पाएँगे कि आपकी पढ़ने की रफ्तार कम हो गई है और आप उसे समझने में भी परेशानी महसूस कर रहे हैं। यह आपके उस विषय से अपरिचित होने के कारण हो रहा है।

इसी प्रकार हम अक्सर देखते हैं कि यदि हमने कुछ गलत पढ़ लिया, तो हमें तुरन्त या फिर थोड़ा आगे पढ़कर पता चल जाता है कि कहीं कुछ गलती हुई है; जैसे पढ़ा गया, "वह भागते हुए घर मर गया" – अभी यह पता करने का कोई तरीका नहीं है कि गलत पढ़ा है, पर जैसे ही पाठक आगे पढ़ेगा, "फिर उसने एक गिलास ठण्डा पानी पिया" - वह समझ जाएगा कि उसने पढ़ने में कोई गलती कर दी है और वह फिर से उस हिस्से को पढ़ेगा और स्वयं सुधार कर लेगा।

आइए, अब हम उपरोक्त दिए गए दो अनुच्छेदों को बच्चों द्वारा जिस प्रकार पढ़ा गया, उसका एक विश्लेषण करते हैं।

पढ़ने का विश्लेषण

पहला अनुच्छेद

लिखा था – यह

पढ़ा गया – यहाँ

हम जब अनुमान लगाते हैं तो कई बार हमारा अनुमान गलत और कई बार सही होता है। यदि हमें बार-बार अनुमान लगाने के मौके मिलेंगे तो हम बेहतर अनुमान लगाने लगेंगे।

जैसे ऊपर 'यह' को 'यहाँ' पढ़ा गया। बच्चे ने 'यह' के बाद 'पूरे'

शब्द को नहीं पढ़ा, यह भी गौर करने वाली बात है। इसके पहले की लाइन है 'कल से हमारे स्कूल में बहुत चहल-पहल है', हो सकता है कि बच्चे ने अनुमान लगाया होगा कि – 'यहाँ चहल-पहल काफी दिनों तक रहेगी'।

हम बच्चों के अनुमान-कौशल को बेहतर करने के लिए कक्षा में कई गतिविधियाँ भी करा सकते हैं, जैसे एक वाक्य आधा बोलना और बच्चों से उसे पूरा करने को कहना, कहानी का मुख्य पृष्ठ दिखाकर यह पूछना कि कहानी किस बारे में होगी, कहानी जहाँ से बदलती है वहाँ पर बच्चों से पूछना कि आगे क्या होगा, कुछ अधूरे शब्द श्यामपट पर लिखना और बच्चों से उन्हें पूरा करने को कहना।

दूसरा अनुच्छेद

- 'कतरनों' शब्द पर अटकना।
- 'झालर' को 'झलाकर' पढ़ना।
- 'उन्हें' को 'उनमें' पढ़ना।
- 'बादाम के छिलकों का पोस्टर' पढ़ने में समय लगना।
- 'कहीं' को 'कई' पढ़ना।
- 'लकड़ी' को 'लड़की' पढ़ना।
- 'रंगोली बनाई है' यह हिस्सा रफ्तार से पढ़ना।

ऊपर की बातचीत में मैंने आपको बताया था कि कुछ शिक्षकों ने कहा कि "दूसरे अनुच्छेद में कठिन शब्द होंगे इसलिए इतनी सारी गलतियाँ हुईं।" जब मैंने कठिन शब्दों को चिह्नित करने का आग्रह किया तो शिक्षक इस राय पर पहुँच पाए कि यह सन्दर्भ अपरिचित है इसलिए इतनी गलतियाँ हुईं।

बच्चों से बातचीत में पता चला कि 'कतरन' और 'झालर' उनके लिए नए शब्द थे। वे इनके अर्थ नहीं जानते थे। वे इसकी जगह शायद कोई और शब्द उपयोग करते थे।

'उन्हें' को 'उनमें', 'लकड़ी' को 'लड़की', 'कहीं' को 'कई' पढ़ना – यह सब शब्दों के समान दिखने के कारण होता है जिसे हम ग्राफिक समानता भी कहते हैं।

इस पैरा का सन्दर्भ बच्चों के लिए काफी अपरिचित था जिससे अनुमान लगाना मुश्किल था। जैसे-जैसे बच्चा आगे पढ़ता जा रहा था, अर्थ न बन पाने के कारण और भी ज़्यादा गलतियाँ होती जा रही थीं। सन्दर्भ अपरिचित होने के कारण बच्चा केवल अक्षर-मात्रा पर निर्भर होता जा रहा था इसलिए ग्राफिक समानता बड़ी परेशानी के रूप में सामने आई। पहले अनुच्छेद में भी ऐसे शब्द रहे होंगे जिनमें ग्राफिक समानता हो सकती थी परन्तु तब ऐसा नहीं हुआ। यहाँ पढ़ने में पूर्वज्ञान की भूमिका स्पष्टता से समझ आती है।

कैसे पढ़ाया जाए यह पाठ?

हम हमेशा तो ऐसी विषय-वस्तु नहीं पढ़ा रहे होते जिसे बच्चे पहले

से जानते हों, तो इस पाठ को कैसे पढ़ाया जाना चाहिए ताकि बच्चे इसे बेहतर ढंग से पढ़ और समझ पाएँ? मुझे खुशी है कि एक शिक्षिका ने इस प्रश्न पर विचार किया और कहा, "यह पाठ शुरू करने से पहले हमें बच्चों से इस तरह के प्रश्नों पर बातचीत करना चाहिए, जैसे सजावट कब-कब करते हैं? किन वस्तुओं से करते हैं? तुमने किसी और शहर में अलग तरह की सजावट देखी है क्या? आदि।" अभी तक की बातचीत के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पाठ शुरू करने से पहले सन्दर्भ स्थापित करने के लिए बातचीत एक सशक्त माध्यम प्रतीत होती है। पाठ के शीर्षक, चित्र, पाठ के कुछ ऐसे शब्द या वाक्यांश जिनसे बच्चे अपरिचित हों आदि – ऐसे कई बिन्दुओं और पहलुओं पर आसानी-से बातचीत की जा सकती है। इन पर बातचीत करने के बाद बच्चे पाठ की विषय-वस्तु और शब्दावली से कुछ हद तक परिचित हो जाएँगे। और इसके लिए आवश्यक है कि पहले हम स्वयं उस पाठ को पढ़ लें।

दूसरे पन्ने का विश्लेषण

आइए, अब उसी पाठ के दूसरे पन्ने (चित्र-3) का विश्लेषण करते हैं। इस पन्ने पर जो गलतियाँ की गईं, वे निम्न हैं:

- 'बारह' को 'बाहर' पढ़ा गया।
- 'बाँस' शब्द नहीं पढ़ पाए।
- 'भूपेन' को 'भूपेंद्र' पढ़ा गया।
- 'परिवार की तस्वीरें भी लाए हैं' को 'परिवार की तस्वीरें भी लगाई' पढ़ा गया।

चित्र-2

• 'बहुत' को 'बोहोत' पढ़ा गया।

इस अनुच्छेद को काफी सारे बच्चों से पढ़वाया गया। बहुत-से बच्चों ने यही गलतियाँ कीं। अब हम एक अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि बच्चों से ये गलतियाँ क्यों हुई होंगी।

'बारह' को 'बाहर' पढ़ा गया, दोनों शब्द एक-से दिखने वाले हैं। इस वजह से गलत पढ़ लेने की गुंजाइश बनती है लेकिन सन्दर्भ से पर्याप्त परिचय न होने के कारण पिछले हिस्से से अर्थ न जोड़ पाना भी एक कारण हो सकता है।

'बाँस' शब्द नहीं पढ़ पाए। बाँस से घर भी बनाए जा सकते हैं, इस तरह की कल्पना का अभाव (अपरिचित सन्दर्भ) इस शब्द को न पढ़ पाने का एक कारण प्रतीत होता है। क्या आपको लगता है कि चन्द्रबिन्दु का होना समस्या हो सकती थी? पाठ में

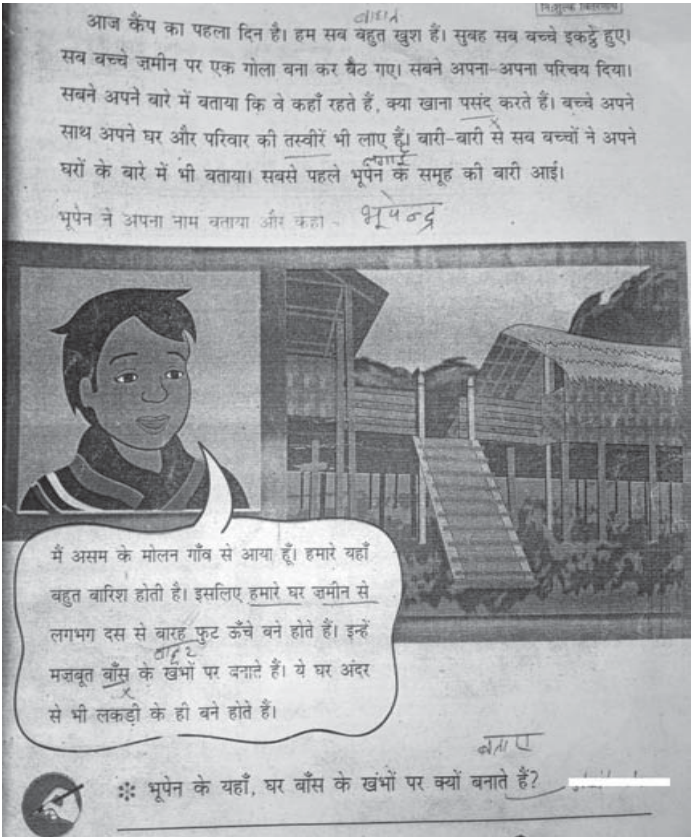
आज कैंप का पहला दिन है। हम सब बहुत खुश हैं। सुबह सब बच्चे इकट्ठे हुए। सब बच्चे ज़मीन पर एक गोला बना कर बैठ गए। सबने अपना-अपना परिचय दिया। सबने अपने बारे में बताया कि वे कहाँ रहते हैं, क्या खाना पसंद करते हैं। बच्चे अपने साथ अपने घर और परिवार की तस्वीरें भी लाए हैं। बारी-बारी से सब बच्चों ने अपने घरों के बारे में भी बताया। सबसे पहले भूपेन के समूह की बारी आई।

भूपेन ने अपना नाम बताया और कहा - भूपेन्द्र

मैं असम के मोलन गाँव से आया हूँ। हमारे यहाँ बहुत बारिश होती है। इसलिए हमारे घर ज़मीन से लगभग दस से बारह फुट ऊँचे बने होते हैं। इन्हें मज़बूत बाँस के खंभों पर बनाते हैं। ये घर अंदर से भी लकड़ी के ही बने होते हैं।

भूपेन के यहाँ, घर बाँस के खंभों पर क्यों बनाते हैं?

चित्र-3

फोटो: मीनू पालीवाल

और भी दो शब्दों में चन्द्रबिन्दु का प्रयोग हुआ है लेकिन वहाँ बच्चे ने चन्द्रबिन्दु सही से पढ़ा है।

'परिवार की तस्वीरें भी लाए हैं' को 'परिवार की तस्वीरें भी लगाई' पढ़ा गया, यहाँ अनुमान में थोड़ी चूक हुई है।

'बहुत' को 'बोहोत' पढ़ा गया, हम लिखते 'बहुत' हैं पर आम बोलचाल में अक्सर 'बोहोत' भी बोल देते हैं।

सागर, मध्य-प्रदेश के बच्चे 'भूपेन' नाम की तुलना में 'भूपेंद्र' से अधिक परिचित हैं इसलिए शायद 'भूपेंद्र' पढ़ा गया हो। हालाँकि, 'भूपेंद्र' एक कठिन शब्द माना जाता है क्योंकि इस शब्द में आधा अक्षर है और बिन्दी है। अक्षर जोड़कर पढ़ने के दृष्टिकोण से भूपेन आसान शब्द है और पढ़ना यदि अक्षर जोड़ना ही होता तो भूपेन ही पढ़ा जाना चाहिए था, लेकिन हुआ इसका उल्टा।

पाठ के अन्त में दिए गए प्रश्न

लिखा था – भूपेन के यहाँ, घर बाँस के खम्बों पर क्यों बनाते हैं?

पढ़ा गया – भूपेंद्र के यहाँ, घर बाँस के खम्बों पर क्यों बनाए?

बच्चे का प्रश्न 'बनाए' पर खत्म हो गया। हालाँकि, उसने देखा था कि आगे 'है' लिखा है, लेकिन मैंने बच्चे के हाव-भाव से महसूस किया कि उसने 'है' को देखने के बावजूद उसे नहीं पढ़ा। शायद उसने भी यही सोचकर दोबारा नहीं पढ़ा कि प्रश्न का अर्थ तो वही है।

बच्चों को पढ़ाते वक्त इस बात का निर्णय करना बहुत महत्वपूर्ण होता है कि बच्चे की मदद कहाँ की जाए, कैसे की जाए और कितनी की जाए। खुद से कोई बात जान जाना, वह 'आहा पल' होता है जिसे हम सीखने की खुशी कहते हैं। बच्चों को भी कक्षा कक्ष में खुद से सोचकर उत्तर ढूँढ़ने का मौका दिया जाना चाहिए, अन्यथा वे कक्षा में निष्क्रिय होकर शिक्षक द्वारा कही गई बातों को ही दोहराते रहेंगे और सीखने के 'आहा पल' को शायद ही कभी महसूस कर पाएँगे।

नोट: यह पूरा विश्लेषण उन बच्चों द्वारा पढ़ने का है जो हिज्जे करके अटक-अटक कर नहीं पढ़ते हैं।

मीनू पालीवाल: अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, सागर, म.प्र. में 2017 से 2022 तक काम किया। इससे पहले वे छह वर्ष तक आईसीआईसीआई बैंक में कार्यरत रहीं। मन में आने वाले सवालों के जवाब की तलाश में वे शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया से जुड़ीं। प्राथमिक कक्षा के बच्चों के साथ काम करने में विशेष रुचि।

सभी चित्र: कश्वी: डिज़ाइन प्रैक्टिशनर बनने की इच्छुक हैं व वर्तमान में बैंगलोर से इसकी पढ़ाई कर रही हैं। मूल रूप से भोपाल की रहने वाली कश्वी अपनी रचनात्मकता का उपयोग समाज के लाभ के लिए करना चाहती हैं।

अध्यापक नहीं, सहायक – एक अनुभव

रेनू उपाध्याय

वर्ष 2020 हम सभी के लिए चुनौतीपूर्ण रहा और उसे भुलाना लगभग असम्भव है। कोविड-19 का अनुभव बताता है कि परिस्थितियाँ कभी भी एकदम अचानक बदल सकती हैं। कोरोना वायरस से जब हमारे देश में भी लॉकडाउन की प्रक्रिया शुरू हुई तो विद्यालय, यातायात, बाज़ार – सब बन्द हो गए। बच्चों तक हमारी पहुँच केवल ऑनलाइन काम देने तक ही सीमित रह गई थी। ऐसे में 16 अप्रैल 2020 को सृजन समूह का गठन हुआ, जिससे जुड़कर सीखने व स्वयं को समझने के कई अवसर प्राप्त हुए। साथ ही, स्वयं के काम व तरीकों के आकलन का मौका भी मिला।

हम ज़्यादातर यही सोचते हैं कि 'नौकरी मिल गई, अब पढ़कर क्या करना है'। नौकरी मिलने तक पढ़ना, और वह भी केवल पाठ्यपुस्तकों तक ही सीमित था। इसके अतिरिक्त थोड़ा-बहुत अखबार या कहानियाँ पढ़ लीं, बस। लेकिन सृजन समूह से जुड़कर जाना कि एक अध्यापक के लिए लगातार पढ़ना कितना ज़रूरी होता है। जैसे एक बीज को पेड़ बनने के लिए मिट्टी, हवा, पानी, खाद, रोशनी आदि की ज़रूरत होती है, वैसे ही किताबें और लेख एक शिक्षक की खुराक हैं।

हम कहानियाँ, अखबार आदि रोज़ ज़रूर पढ़ते हैं पर अपने व्यवसाय से जुड़ी सामग्री को ढूँढ़ने और पढ़ने से हम अक्सर कतरा जाते हैं। सृजन समूह ने हमें यह समझने का मौका

दिया। विश्व में तरह-तरह का साहित्य मौजूद है लेकिन हमारे काम के अनुसार, हमारी आवश्यकता की सामग्री को उपलब्ध कराने का काम अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन के सदस्यों ने किया। यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य था जिसे बखूबी निभाया गया। इस दौरान हमने कहानियाँ, डायरी लेखन, आत्मकथा, साक्षात्कार, भ्रमण व अन्य कई तरह की रचनाओं को पढ़ा। प्रत्येक रचना अपने आप में अलग थी। इस सफर में विभिन्न प्रकार की रचनाओं का मैंने अपने कार्य क्षेत्र में कैसे प्रयोग किया, क्या-क्या जाना-समझा – उसे यहाँ साझा कर रही हूँ।

बच्चों की समस्याओं की समझ

आम तौर पर शिक्षक और विद्यार्थी का रिश्ता पढ़ने-पढ़ाने तक ही सीमित रहता है। विद्यार्थी के विद्यालय न आने या विषय समझ में न आने पर हम कभी उनके कारणों को गहराई से जानने का प्रयास नहीं करते। सृजन समूह में एक रचना साझा की गई थी 'गरीबी रेखा के नीचे' जिसमें लेखक और उनके मित्र गरीबी रेखा से नीचे गुज़र-बसर कर रहे लोगों के जीवन के बारे में जानने के लिए वैसी ही निर्धारित आय पर अपना जीवन जीकर देखते हैं। नतीजतन, उन्हें हर कदम पर बहुत सोच-विचार और बहुत-से समझौते करने पड़ते हैं। खाने-पहनने से लेकर दैनिक जीवन में प्रयोग आने वाली समस्त वस्तुओं तक। रचना बताती है कि वे सभी बच्चे जो हमारे पास पढ़ने आते हैं, लगभग इसी आय वर्ग के होते हैं, और वे सब विद्यालय आने से पूर्व ऐसी ही अनेकों समस्याओं से जूझ रहे होते हैं। इसे पढ़ने के बाद समझ में आया कि अध्यापक को बच्चों के साथ काम करते समय उनके अभिभावक बनकर भी सोचना पड़ेगा, उनकी परेशानियों को समझना होगा और फिर पढ़ाना होगा।

इस समूह से जुड़ने के बाद मैंने कक्षा में अधिकतर अनुपस्थित रहने वाले छात्रों की समस्याओं को समझकर उनका निराकरण करने के प्रयास किए। एक बच्चे के घर में

माता-पिता के बीच शराब के कारण रोज़ झगड़ा होता था। मुझे उसके साथ अपने व्यवहार को पूरी तरह से बदलना पड़ा। उसे छोटे-छोटे कामों पर प्रोत्साहित किया और यही प्रोत्साहन उसके नियमित रूप से विद्यालय आने में काम आया।

एक बच्ची के घर की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। उससे कहा कि वह अपनी किसी भी आवश्यकता के लिए घर पर न कहकर, अपनी ज़रूरत हमसे साझा करे।

कक्षा-शिक्षण में बदलाव

परम्परागत तरीके से हटकर शिक्षा को कैसे रुचिकर बनाना है, यह सृजन समूह से सीखने को मिला। हमने समूह में ऐसे शिक्षकों के बारे में कई आलेख पढ़े जिन्होंने अपने आसपास के परिवेश की समझ के आधार पर विद्यालय आए बच्चों को नकारने की बजाय, उनकी समझ को बड़ी खूबसूरती के साथ विषय से जोड़कर पढ़ाया। बच्चे की भावनाओं का सम्मान करते हुए उनकी बातों को विषय के साथ जोड़ा। इसके अन्तर्गत 'खूबसूरती और सच' लेख पर बात करें तो हम देखते हैं कि दादा जी द्वारा दिन व रात के बनने को कहानी के रूप में बच्चे को समझाया गया, तो अध्यापिका ने भी दादा जी की बातों को विज्ञान से बड़ी खूबसूरती से जोड़ा।

'शंकर जी का पसीना' और 'जंगल का बनना' में बच्चे द्वारा समाज से लाए ज्ञान का इस्तेमाल करते हुए अध्यापिका ने बातचीत द्वारा बच्चों को स्वयं से समझने के अवसर प्रदान किए। आपसी चर्चा द्वारा वे समझ पाए कि जंगल शंकर जी के पसीने से नहीं, बल्कि बीजों के बिखरने से बनते हैं। 'व्याकरण की घण्टी' लेख हमारे सामने दो तरह की शिक्षण प्रणालियों को प्रस्तुत करता है। पहली सिर्फ सूचनापरक थी, पता नहीं चल रहा था कि बच्चे क्या और कितना ग्रहण कर रहे हैं। दूसरे तरीके में अध्यापिका ने विशेषण की समझ विकसित करने के लिए बच्चों के अनुभवों को प्राथमिकता दी और विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा विषय तक पहुँचाया। बच्चों को मुक्त अभिव्यक्ति के बहुत सारे अवसर दिए। इस तरह के आलेख पढ़कर मुझे अपनी शिक्षण पद्धतियों पर सोच-विचार और सुधार के अवसर प्राप्त हुए। मैंने कक्षा-कक्ष में ऐसा वातावरण बनाने का प्रयास किया कि बच्चे अपने ज्ञान के साथ-साथ खुद को महत्वपूर्ण समझें और अपनी बातें एवं अनुभव साझा करें।

किताबों का महत्व

दिवास्वप्न, बच्चों से बातचीत, पढ़ना और पढ़ाई, नीलबाग का स्कूल आदि किताबों को पढ़ने के बाद जाना कि अभी हम बहुत पीछे हैं। एक अध्यापक को बच्चों के साथ जुड़ने के लिए कितने विभिन्न तरीकों से सोचना

पड़ता है। उनके अन्दर पढ़ने की भावना विकसित करने के लिए किस तरह से विद्यालय में व्यवस्थाएँ बनानी ज़रूरी हैं, बच्चों को स्वयं से कैसे जोड़ना है – इन सब के बारे में हमारी समझ बनाने में किताबों ने बहुत मदद की। इन किताबों के ज़रिए जाना कि अध्यापक और अभिभावक के रूप में हम कहाँ गलतियाँ करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण है कि अध्यापक को अध्ययन करते रहना चाहिए ताकि अपने काम को परखने के साथ-साथ उसमें सुधार कर पाए।

अभिभावकों को समझना

हम बच्चों के विद्यालय न आने पर उनके अभिभावकों को डाँटते हैं, लेकिन शायद ही कभी यह जानने का प्रयास करते हैं कि ऐसी कौन-सी समस्याएँ और मजबूरियाँ हैं जिनके कारण वे अपने बच्चों पर ध्यान नहीं दे पा रहे हैं। हमने ऐसे आलेख भी पढ़े जिसमें अध्यापिका द्वारा बच्चे के स्कूल न आने पर अभिभावकों को दोष दिया जा रहा था। उस पर लेखिका ने कहा, "क्या कभी आपने उनके अभिभावकों की परेशानी जानने का प्रयास किया?" यह वाक्य मुझ पर बहुत गहराई तक असर कर गया। और सोचने पर विवश कर दिया कि जो अभिभावक दो वक्त की रोटी की जुगाड़ के लिए सुबह 7 बजे से रात 8 बजे तक काम कर रहे हैं, उनसे शिकायत करने का क्या अर्थ है। और क्या यह हमारी संवेदनहीनता नहीं दिखाता?

पुस्तकों के चयन का नज़रिया

इस दौरान बहुत सारे आलेखों को पढ़ने के बाद जाना कि कक्षा-कक्षा में अलग-अलग समझ रखने वाले बच्चे होते हैं। उन्हें केवल पाठ्यपुस्तक या एक तरह की किताबों से पढ़ाना सम्भव नहीं है। पुस्तकालय में जो किताबें उपलब्ध भी हैं, उनमें से ज़्यादातर बच्चों के अनुरूप नहीं हैं। कुछ कहानियाँ बहुत बड़ी व नीरस हैं तो कुछ में चित्रों का अभाव है जिन्हें पढ़ने में बच्चे रुचि नहीं दिखाते। सृजन समूह से जुड़ने के बाद बरखा सीरीज़ व *एकलव्य* प्रकाशन की किताबों के साथ काम किया तो पाया कि बच्चों में काफी अन्तर आया है। कक्षा के कई बच्चे जो पहले केवल अक्षरों की समझ रखते थे, आज बहुत अच्छी तरह से पढ़ना सीख गए हैं।

मिड-डे मील पर बदला नज़रिया

"वे स्कूल क्यों आते हैं?" आलेख पढ़ने से पूर्व मेरा मानना था कि मिड-डे मील पढ़ाई में बहुत बड़ा बाधक है। शिक्षकों का बहुत सारा समय इससे सम्बन्धित डाक बनाने में व्यर्थ चला जाता है। बच्चों का भी पूरा ध्यान किचन की तरफ ही लगा रहता है। किन्तु जब सृजन समूह में इस लेख से सम्बन्धित प्रतिक्रियाओं को पढ़ा व

चर्चा सुनी तो लगा कि अपनी सोच को बदलना होगा। जो बच्चे हमारे पास आते हैं, उनके घर की आर्थिक स्थिति बिलकुल भी ठीक नहीं रहती और शायद उन्हें समय पर भरपेट खाना भी न मिलता हो। इसलिए वे बड़ी आस के साथ स्कूल में दिन के भोजन की राह देखते हैं। भूख से ग्रस्त बच्चे भला पढ़ाई में ध्यान कैसे लगा सकते हैं।

स्वयं का आकलन व महत्व

समूह में साझा कई आलेख पढ़ने के बाद लगता है कि हमारी शिक्षण पद्धति, आकलन की समझ व विद्यालय में कार्य करने के तरीके कितने गलत हैं। 'जूलिया वेबर की डायरी' हमें बताती है कि अध्यापक के अन्दर यदि उत्साह है तो महंगे भवन, लैब, स्मार्टफोन आदि के बिना भी कुशल अध्यापन कार्य किया जा सकता है। अपने लक्ष्य निर्धारित कर प्रत्येक छात्र की पृष्ठभूमि पता करके अपनी कार्य-योजना बनाई जा सकती है।

इस दौरान हमने यह भी सीखा कि विद्यालय केवल पाठ्यक्रम ही नहीं सिखाता, बल्कि कई और गुणों का भी विकास करता है। सी.एन. सुब्रमण्यम जी का लेख 'बच्चों को फेल न किया तो क्या किया?' परीक्षा और मूल्यांकन के बारे में हमारी समझ एवं धारणाओं जैसे बच्चे को फेल न किया जाए तो वे नई कक्षा में क्या करेंगे, वे अन्य बच्चों से पिछड़ जाएँगे, आदि का बड़े तर्कपूर्ण ढंग से खण्डन करता है। यह लेख बताता है कि फेल होना बच्चों के लिए कतई प्रेरणा-स्रोत नहीं हो सकता, बल्कि उन्हें अत्यन्त हतोत्साहित करता है। यह लेख मूल्यांकन व फेल करने में अन्तर बताता है – मूल्यांकन करने का तात्पर्य बच्चों की क्षमता को जानना है जबकि फेल करना एक प्रताड़ना है।

'शिक्षक पढ़ेगा नहीं तो बढ़ेगा नहीं' आलेख हमें बताता है कि शिक्षक के लिए स्वाध्याय कितना ज़रूरी है। यदि हमें अपने विषय का पूर्ण ज्ञान चाहिए तो गहराई से पढ़ना होगा। आलेख पर चर्चा के दौरान अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन के साथियों के प्रश्नों ने मुझे अपने अन्दर झांकने को विवश किया कि शिक्षक समुदाय स्वाध्याय के लिए अभिप्रेरित क्यों नहीं हो पाता। यह वास्तव में चर्चा का विषय है। एक अध्यापक होने के बाद भी हम पढ़ने से दूर क्यों भागते हैं? "क्या शिक्षक एक पेशेवर है?" लेख ने समझाया कि हम जिस 'पेशेवर' शब्द से स्वयं को जोड़ने से बचते हैं, उसका वास्तविक अर्थ है कि हमारे पास अपने प्रोफेशन के अनुरूप क्षमताएँ होनी चाहिए। इस तरह के आलेखों को पढ़ने के बाद समझ में आता है कि अभी शिक्षा प्रणाली में कितने ही सुधारों की ज़रूरत और सम्भावना है।

अध्यापन एक ऐसा कार्य है जहाँ समय-समय पर अपने आकलन की आवश्यकता पड़ती है, पर इस तरफ हम नहीं के बराबर ध्यान देते हैं और अपनी ताकत और कमियों को समझना नहीं चाहते हैं। सर्वप्रथम तो हमें इन्हीं से रूबरू होना होगा।

कार्य-योजना का महत्व

अधिकांशतः हम बगैर किसी योजना के शिक्षण कार्य शुरू कर देते हैं। कक्षा में गए, पाठ खोला, पढ़ाया और प्रश्नों के उत्तर श्यामपट पर लिखना शुरू कर दिए। लेकिन शिक्षक समूह के निर्माण के बाद मुझे योजनाबद्ध तरीके से तैयार की गई पाठ-योजना का महत्व समझ में आया। इस समूह में कहानी व कविता साझा की जातीं और फिर शिक्षकों द्वारा उस पाठ पर कार्य-योजना तैयार की जाती थी। हममें से ही कोई एक पाठ पर आधारित प्रश्न, गतिविधि आदि तैयार करता था। इसी तैयारी के आधार पर हम कक्षा-कक्ष में जाते थे और बाद में अपने कक्षा-अनुभवों को समूह में साझा करते थे। योजना के तहत काम करते हुए हमने पाया कि यदि पाठ-योजना बनाकर पढ़ाया जाए तो बच्चे बहुत सरलता से समझ जाते हैं। योजना इस तरह से बनाई जाती थी कि बच्चों को अधिक-से-अधिक बातचीत व अभिव्यक्ति के अवसर मिलें। इसके तहत हमने जितने भी पाठों पर काम किया, उन सभी में परिणाम हमारी आशा से कहीं बेहतर थे।

निष्कर्ष

सृजन समूह ने एक शिक्षक व अभिभावक, दोनों ही रूपों में स्वयं को परखने का एक अवसर प्रदान किया। आज समूह से जुड़ा प्रत्येक सदस्य अपने काम के तरीकों में बहुत सारे बदलाव महसूस करता है। मुझे लगता है कि हम बच्चों को पहले की तुलना में खुद के ज़्यादा करीब पाते हैं। उनकी भावनाओं, भाषा व संस्कृति का सम्मान करते हैं। यह इसलिए हो पाया क्योंकि समूह ने हमें अपने कार्यों में बदलाव लाने की एक दिशा दी। आज हम सभी कक्षा में एक अध्यापक की भूमिका में नहीं, बल्कि एक सहायक के रूप में व्यवहार करते हैं। बच्चों के प्रश्न हमारे प्रश्नों से ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं। उनकी समस्याओं को समझकर हम उनके साथ मिलकर काम करने का प्रयास करते हैं।

रेनू उपाध्याय: राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, धुसरा, सितारगंज (ऊधम सिंह नगर) में सहायक अध्यापिका हैं। पढ़ने-लिखने व बच्चों के शिक्षण में गहरी रुचि।

सभी चित्र: कश्वी: डिज़ाइन प्रैक्टिशनर बनने की इच्छुक हैं व वर्तमान में बैंगलोर से इसकी पढ़ाई कर रही हैं। मूल रूप से भोपाल की रहने वाली कश्वी अपनी रचनात्मकता का उपयोग समाज के लाभ के लिए करना चाहती हैं।

पढ़ना ज़रा ठहरना... ठहरना ज़रा सोचना!

अनिल सिंह

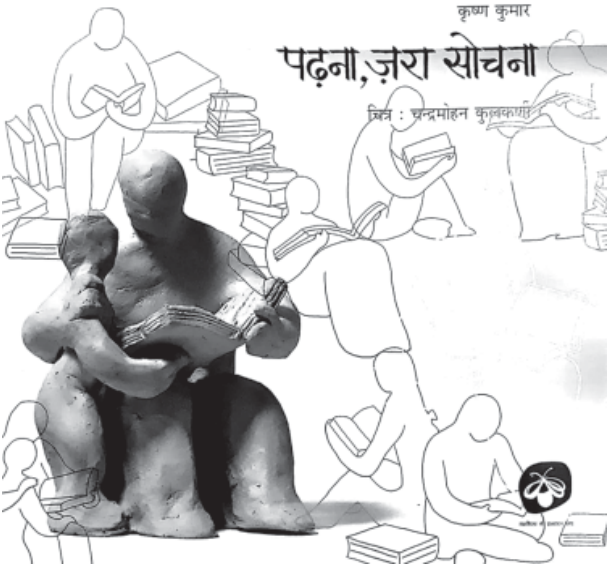

चित्र इंटरनेट से साभार

पढ़ना ज़रा सोचना शीर्षक से एक अद्भुत किताब आई है जो शिक्षा के बड़े दायरे में पढ़ने और सोचने-समझने से जुड़े कुछ बहुत ही बुनियादी सवाल उठाती है, साथ ही उस पर विस्तार से आपसी बात भी करती है। आपसी बात इसलिए कि इसमें लेखक कोई पक्षकार नहीं बनता और न पाठक को पक्षकार बनाता है, बल्कि साथ मिलकर बात करता है। इस किताब में सात अध्याय हैं, हर अध्याय एक अलग सवाल उठाता है और हर सवाल हमें झकझोरता है। कृष्णकुमार इन सवालों के ज़रिए स्कूल में पढ़ने-पढ़ाने के तरीकों, 'पढ़ाई' व 'पढ़ना' को लेकर आम समाज की धारणा और इस धारणा के नफा-नुकसान के बारे में सिलसिलेवार तरीके से बात करते हैं।

उनकी भाषा में तल्खी है लेकिन वह चुभती नहीं बल्कि एक वाजिब फिक्र पैदा करती है जिससे पढ़ने वाले की पेशानी में बल पड़ते हैं कि 70 साल बाद भी हम शिक्षा के कई

बुनियादी मसलों को सुलझा नहीं पाए हैं या यूँ कहें कि समझ ही नहीं पाए हैं।

कृष्णकुमार की कला

कृष्णकुमार उन विरले लेखकों में से हैं जिनका लिखा हुआ अकादमिक, गैर-अकादमिक, कथा-प्रेमी, शिक्षक, विद्यार्थी, सभी को समान रूप से रुचता है। इसका एक कारण तो यह समझ में आता है कि वे लिखने में शब्दों की बड़ी किफायत बरतते हैं, सीधी-सच्ची बात कहते हैं और दूसरा, अपनी बात कहने के लिए वे कोई दूर की कौड़ी खोजने नहीं जाते बल्कि एक नज़दीक का और बहुत जाना-पहचाना वाकया या अनुभव लेकर आते हैं। वे सिर्फ लिखने के लिए नहीं लिखते बल्कि उनके लिखने में सच्चा सरोकार, कसक और भोगा हुआ यथार्थ मिलता है।

उदाहरण के लिए, इस किताब की भूमिका के एक अंश से हम इस बात को समझ सकते हैं कि उनकी बात कितनी पैनी और कहन कितना सरल व प्रभावी है। वे लिखते हैं कि "जो पढ़ नहीं सकते, उन्हें अनपढ़ कहकर हम ऐसे लोगों के लिए कोई शब्द नहीं छोड़ते जो पढ़ सकते हैं, मगर पढ़ते नहीं। उनसे भी बड़ी संख्या में वे लोग हैं जो पढ़ते हैं, पर समझते नहीं।" यह पुस्तक इन्हीं दो समस्याओं के बारे में है - पहली, पढ़ने की आदत का अभाव और दूसरी, समझने की चिन्ता किए बगैर पढ़ते जाना। जिस लहज़े में कृष्णकुमार अपनी बात रखते हैं, वह कटाक्ष लग सकता है पर वह इतना सच्चा, प्रत्यक्ष और चिन्ता से लबरेज़ होता है कि हम उसके साथ हो लेते हैं।

समस्याओं के बारे में बात करते हुए वे न तो खुद उलझते हैं और न पाठक को उलझने देते हैं, उनके उदाहरण, प्रतीक और बिम्ब ठेठ देसी होते हैं। जिन दो समस्याओं का ज़िक्र कृष्णकुमार अपनी भूमिका में करते हैं, उनके बारे में आगे लिखते हुए वे एक कमाल का चित्र खींचते हैं। वे लिखते हैं कि "दोनों की जड़ यह पुस्तक शिक्षा प्रणाली में तलाशती है। जड़ मूसला भी है और झकड़ा भी। मूसला जड़ गहरे धँसी होती है और झकड़ा जड़ मिट्टी के एक बड़े दायरे में फैली रहती है।"

किस बात की चिन्ता है?

उनकी चिन्ता हर बार यही दिखाई देती है कि 70 साल में भी हम पढ़ने-लिखने को लेकर अपनी साधनवादी सोच के दायरे से बाहर नहीं आ सके हैं। 'पढ़ने' से लगी हुई 'सोचने' की समस्या है जो कहीं ज़्यादा गम्भीर है। पढ़ना और सोचना एक जागृत समाज के लिए सरोकार बनाने के बुनियादी विषय हैं लेकिन इस पर हमारी प्रगति इतनी धीमी है कि वह कुछ न होने के बराबर है।

अपने पहले ही अध्याय 'पढ़ना,

बचपन और साहित्य' में कृष्णकुमार पढ़ने की ललक और उद्देश्य के बीच रस्साकसी का बहुत ही सरलता से खुलासा करते हैं। पाठ्यपुस्तकों और परीक्षा-केन्द्रित हमारी शिक्षा प्रणाली ने अपने लिए पढ़ने, आनन्द के लिए पढ़ने, फुरसत से पढ़ने, रुककर, ठहरकर, इत्मीनान से पढ़ने जैसे सच्चे सुख छीन लिए हैं। कृष्णकुमार के शब्दों में, "पढ़ने का एक उद्देश्य इस सुख या आनन्द की तलाश है जो केवल साहित्य दे सकता है।" लेकिन हम अच्छी तरह जानते हैं कि साहित्य को लेकर आम समाज और स्कूल का क्या रवैया है। बचपन तो इससे पूरी तरह महरूम है। साधनवादी दृष्टिकोण पढ़ने को उपयोगिता, काम आने, मिलने वाले फायदे और ज्ञान में बढ़ोत्तरी के फॉर्मूले से ही देखता है। यही कारण है कि पढ़ना सिर्फ पढ़ना भर रह जाता है ताकि वह परीक्षा में काम आ सके। साहित्य इस खाँचे में फिट ही नहीं बैठता।

'पढ़ना और पढ़ाई' अध्याय में यह बात और साफ हो जाती है। 'पढ़ाई' एक खास उद्देश्य के लिए ही पढ़ना है और ज़ाहिर है, बहुतायत यह उद्देश्य कक्षा में सवालों के जवाब दे पाना, परीक्षा में नम्बर लाना, जानकारी हासिल करना या प्रतियोगिता की तैयारी करना ही है। इसमें महससू करना, लेखक से रूबरू होना, रुककर सोचना, विचार करना, अपनी सोच या दृष्टि शामिल करना, राय बनाना सर्वथा वर्जित है। कृष्णकुमार कहते हैं कि "इस नज़रिए से देखने पर उपन्यास या संस्मरण जैसी

विधाएँ बेकार साबित होंगी।" साहित्य को फुरसत की, और अतिरिक्त चीज़ मानकर उसके साथ बेगाना बर्ताव करने वाला समाज और स्कूल दरअसल, एक पूरी पीढ़ी को जीवन और उसके मानवीय आयाम से काट रहा होता है। कृष्णकुमार के शब्दों में, "बच्चों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपना वक्त ऐसी चीज़ों में खर्च करें जो उन्हें जीवन में आगे बढ़ने में मददगार हों। इस उम्मीद का दबाव किशोरों में बहुत है।"

'वाचन और पाठ' अध्याय में वे स्कूल संसार की एक और विडम्बना की ओर इशारा करते हैं। पाठ पढ़ना और बार-बार उसका वाचन करना स्कूलों में एक मज़बूत परम्परा है। इस मशीनी प्रक्रिया के पीछे यह सोच है कि पाठ में निहित एक निश्चित अर्थ, उसे बार-बार पढ़ने या वाचन करने से वह पाठक में ट्रांसमिट हो जाएगा। इसमें अपने मन से अर्थ लगाने या खुद से अर्थ गढ़ने की कोई गुंजाइश नहीं है। इसलिए वाचन पर इतना ज़ोर दिया जाता है। चुपचाप इत्मीनान से पढ़कर उसे अपने स्तर पर समझने के लिए जो अभ्यास, अवकाश और खुद के यत्न व उत्कण्ठा की ज़रूरत है, स्कूल उसकी मोहलत शायद ही किसी बच्चे को देता हो।

डिजिटल दुनिया की चुनौतियाँ

अपने चौथे अध्याय 'पढ़ना सोचना और डिजिटल ज़माना' में कृष्णकुमार एक नई चुनौती की तरफ इशारा करते हैं जो तेज़ गति से पढ़ने, खूब सारा फटाफट पढ़ लेने और एक-साथ कई तरह की सामग्री पढ़ने के संजाल से उत्पन्न हुई है। कृष्णकुमार यहाँ स्पष्ट करते हैं कि "चुपचाप बैठकर एक कहानी या उपन्यास को काफी तेज़ गति से पढ़ा जा सकता है। पर यदि हम विज्ञान या भूगोल के बारे में कोई लेख पढ़ रहे हैं तो हम जल्दी-जल्दी नहीं पढ़ सकते। कविता और नाटक की पटकथा पढ़ते हुए भी हमें धीरे-धीरे चलना पड़ता है।"

शिक्षा में यदि सिर्फ पढ़ना शामिल है और सोचना नदारद है तो तरह-तरह की सामाजिक दुर्घटनाएँ होना लाज़मी है। किसी की बात समझे बिना उस पर प्रतिक्रिया

दाग देना, पढ़कर अर्थ का अनर्थ कर बैठना, किसी बात के मर्म से वंचित रहना और पढ़ते वक्त दसियों अन्य बातों पर ध्यान जाने देना, इसी तेज़ रफ्तार से और सामग्री के सैलाब में पढ़ने का नतीजा है।

जिस समीक्षाई चेतना या क्रिटिकल थिंकिंग की आज शिक्षा-जगत में बड़ी चर्चा और संजीदा फिक्र है, उसके लिए पढ़ने की प्रक्रिया में इसका तत्व शामिल करना अब बड़ा कठिन हो चला है। यह कठिनाई, रफ्तार को अतिशय महत्व देने के कारण बनी है। डिजिटल माध्यमों ने इसे और जटिल बना दिया है। कुछ शोध तो साफ तौर पर कहते हैं कि "गहन रूप से पढ़ना, जो समीक्षाई सोच को सम्भव बनाता है - डिजिटल माध्यमों के आदी विद्यार्थियों में विकसित करना मुश्किल पाया गया है।" हालाँकि, कृष्णकुमार यह भी कहते हैं कि "जानकारी हासिल करने, ज़्यादा-से-ज़्यादा लोगों तक उसकी पहुँच बनाने आदि के लिए डिजिटल माध्यमों की अनदेखी नहीं की जा सकती। सूचनापरक लाभ के लिए डिजिटल माध्यमों पर पढ़ सकना, साहित्यिक अनुभव और संज्ञानात्मक विकास के लिए पारम्परिक माध्यम, जैसे किताब को धीरे-धीरे ध्यान देते हुए पढ़ना, ये दोनों ही ज़रूरी हैं।"

हार्ड-स्टडी

पाँचवें अध्याय 'पढ़ने का माहौल' में कृष्णकुमार स्कूलों के भयावह वातावरण का ज़िक्र करते हैं जिसमें अन्धाधुन्ध पढ़ाई, खूब मेहनत, दिन-रात की लगन और तरह-तरह के कोचिंग और ट्यूशन की घेराबन्दी है। कृष्णकुमार लिखते हैं कि "नर्सरी और प्राइमरी कक्षाओं के समय से ही बच्चे पढ़ाई की इस निर्मम संस्कृति में

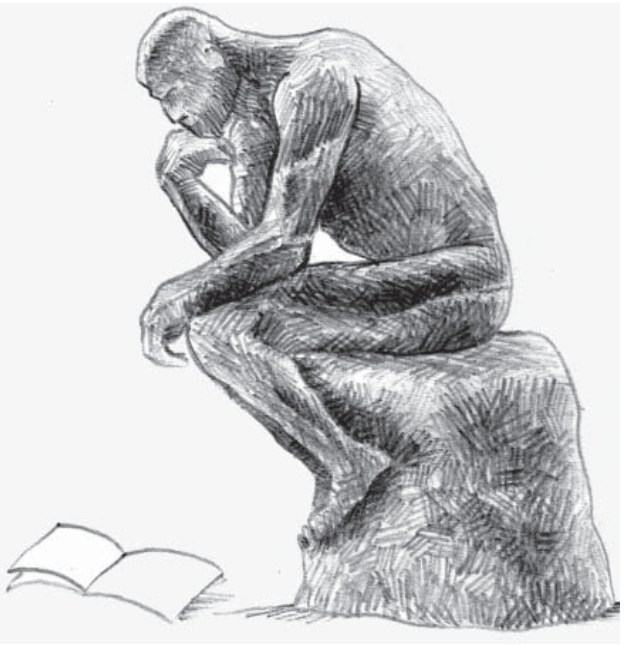

धकेल दिए जाते हैं। बड़े होने के क्रम में वे इस 'पढ़ाई' की संस्कृति में डूबने लगते हैं, और दसवीं-बारहवीं तक आते-आते आकण्ठ डूब चुके होते हैं। उनकी आन्तरिक या स्व-स्फूर्त प्रेरणा मर चुकी होती है।" कृष्ण कुमार कहते हैं कि "इस विकराल परिस्थिति का एक इलाज साहित्य है। बाल साहित्य बच्चों के जीवन में पढ़ाई के इस वर्चस्व को चुनौती दे सकता है। वह 'पढ़ाई' की जगह 'पढ़ने' के माहौल की माँग करता है। ऐसा माहौल स्कूल और समाज, दोनों ही बना सकते हैं। यह कठिन है लेकिन दुसाध्य नहीं।"

छटे अध्याय 'अर्थ कहाँ से आता है?' में कई सारे उदाहरणों के मार्फत बहुत ही रोचक ढंग से कृष्णकुमार इस अर्थ के 'आने' को खोलते हैं। किसी पढ़े हुए को अर्थ देने में पाठक की सक्रिय भूमिका है। जीवन से जोड़ पाना, पात्रों और घटनाओं से तादात्म्य बना पाना और इस तरह उसके भीतर उतर जाना या उसकी चेष्टा करना ही अर्थ की रचना कही जा सकती है। पर यदि हम किसी वजह से खुद को ऐसा कर पाने से रोक रहे हों तो समझ में आना या अर्थ का आना नहीं हो पाएगा। भूख, डर, पढ़ पाने का संघर्ष, अक्षरों को जोड़ने की यांत्रिक प्रक्रिया, अर्थ लगाने का दबाव – कुछ ऐसे तत्व हैं जो इस अर्थ के बनने की राह में सबसे बड़े अवरोध हैं। फिर अध्यापक द्वारा अर्थ बताए जाने का नियमित अभ्यास एक और दुर्घटना है। और विडम्बना यह कि इसे ही असल पढ़ाई कहा जाता है।

कृष्णकुमार ने इस अध्याय में रोज़मर्रा के जीवन-अनुभवों के साथ-साथ कुछ कहानियों और कविताओं के माध्यम से 'अर्थ के आने' और 'अर्थ के बनने' की मीमांसा बहुत ही रोचक तरीके से की है। अर्थ बनाने के कौशल के लिए शुरुआती दिनों से साहित्य का सानिध्य ही एकमात्र रास्ता है। पाठ्यपुस्तकें अपना काम करें लेकिन साथ ही साथ साहित्य अपनी राह बनाता चले। कहीं दोनों रास्ते मिलें तो सोने पर सुहागा, नहीं तो अपना-अपना रास्ता जैसी स्थिति भी भली ही है।

क्या है अच्छा बाल साहित्य?

साहित्य की वकालत करते समय इस सवाल से दो-चार होना आम बात है कि "अच्छा बाल साहित्य किसे कहें?" अन्तिम और सातवें अध्याय 'अच्छा बाल साहित्य किसे मानें?' में *गुलिवर की यात्राएँ* किताब की दो कहानियों के माध्यम से वे इस चर्चा को खोलते हैं। कृष्णकुमार लिखते हैं कि "गुलिवर या सिन्दबाद की यात्राएँ काल्पनिक ही हैं लेकिन लेखक हर अनुभव और उससे पैदा होने वाले भाव को विस्तार से बताकर ऐसा यथार्थ बोध पैदा करता है जिसकी ताकत से बड़ा भी अपने बचपन में लौट जाए। कौतूहल, डरने का रोमांच

और उसके खत्म होने की खुशी, दुनिया को उलट-पुलट देखने की अथक चाह और चीज़ों को बार-बार बिगाड़कर दुबारा बनते देखने का सुख। ये कहानियाँ इसलिए सर्वकालिक हैं क्योंकि ये बच्चों की स्वाभाविक इच्छाओं का प्रतिबिम्ब पेश करती हैं।"

परन्तु प्रचलित सवाल तो साहित्य से मिलने वाली सीख का है। यह बहुत ही हैरान और हताश करने वाला सवाल है। ऐसे में साहित्य से मनोरंजन हासिल होने वाला तर्क भी कुछ राहत देता हुआ प्रतीत नहीं होता। कृष्णकुमार के शब्दों में "सीख और मनोरंजन के ये कटघरे प्रायः बाल साहित्य के चयन के आधार की चर्चा को रोककर खड़े हो जाते हैं। सीख और मनोरंजन के अलावा भी साहित्य की चर्चा के लायक अनेक आयाम हैं।" कल्पना और विचार ऐसे दो आयाम हैं जिन्हें हम न तो सीख की श्रेणी में रख सकते हैं और न मनोरंजन की।

साहस और रोमांच के साथ ही एहसास की परतें टटोलने में साहित्य राह देता है। साहित्य में दोस्ती, प्रेम, संघर्ष, डर, दुविधा, सफलता-असफलता, खुशी, अभाव के सिरे खुलते हैं। कौन है जो सामान्य जीवन के इन सिरों से परिचित न होगा? साहित्य से क्या होगा, यह साधनवादी दृष्टिकोण से बता पाना बड़ा मुश्किल है। साहित्य पढ़ने और पढ़ने की आदत डाल लेने से बचपन में हम मनुष्य की दुनिया के निरन्तर फैलते हुए नक्शे का मानस बना पाते हैं, ऐसा कहना पर्याप्त है।

तक्षशिला के जुगनू प्रकाशन से आई यह किताब हम सबको पढ़नी चाहिए। इसका एक-एक अध्याय एक मुकम्मल चर्चा है जो नई नज़र देता है और शिक्षा के दायरे में अपने समय की बुनियादी बातों को समझने का तार्किक आधार देता है। मात्र 65 पन्नों में ऐसी सारगर्भित सामग्री कम ही पढ़ने को मिलती है, तिस्पर चन्द्रमोहन कुलकर्णी की बनाई हुई मानवाकृतियाँ इसे एक मानवीय स्पर्श और दार्शनिक फ्लेवर देती हैं।

अनिल सिंह: पिछले 25 वर्षों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। विगत डेढ़ दशक से प्राथमिक शिक्षा उनका प्रमुख कार्य रहा है। भोपाल के आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल की संकल्पना के दिनों से वे जुड़े रहे हैं और उसका संचालन किया। वर्तमान में टाटा ट्रस्ट के पराग इनिशिएटिव से जुड़कर बाल साहित्य और पुस्तकालय संवर्धन का काम कर रहे हैं।

सभी चित्र: सौम्या मैनन: चित्रकार एवं एनिमेशन फिल्मकार। विभिन्न प्रकाशकों के साथ बच्चों की किताबों एवं पत्रिकाओं के लिए चित्र बनाए हैं। बच्चों के साथ काम करना पसन्द करती हैं।

'क्या अँग्रेज़ी भारत के भविष्य की भाषा है?'
पेगी मोहन के लेख पर टिप्पणियाँ

टी. विजयेन्द्र

यह लेख *संदर्भ* अंक-145 (मार्च-अप्रैल, 2023) में प्रकाशित पैगी मोहन के लेख और अंक-146 (मई-जून, 2023) में प्रकाशित हरजिंदर सिंह 'लाल्टू' के लेख पर टिप्पणी है।

पेगी के लेख की अन्तर्निहित धारणा यह है कि चूँकि भारत एक राष्ट्र है इसलिए उसकी एक 'राष्ट्रीय' भाषा है। हिन्दी को 'राष्ट्रीय' भाषा बनाने की परियोजना विफल हो चुकी है और अँग्रेज़ी उसकी जगह ले रही है।

इस धारणा के साथ कई समस्याएँ हैं। जैसा कि लाल्टू ने संकेत किया है, 1947 में भी यह बात स्पष्ट नहीं थी कि इस उपमहाद्वीप के कौन-से हिस्से हिन्दुस्तान में शामिल होंगे। एक राष्ट्र के रूप में हिन्दुस्तान 'राष्ट्रीयतावादी' आन्दोलन के कुछ धड़ों की निर्मिति था। इस निर्मिति का एक पहलू यह था कि हिन्दुस्तान का बूर्ज़्वा वर्ग, जो खुद को हिन्दुस्तान के नए शासक वर्ग के रूप में देखता था, इसे अपने लिए एक 'एकीकृत सुरक्षित' बाज़ार मानता था। दरअसल, पाकिस्तान बनाए जाने की एक मुख्य वजह इस मुल्क की संघीय संरचना पर उनका बल था जो कि हिन्दुस्तान के बूर्ज़्वा वर्ग को स्वीकार नहीं था।

दक्षिण एशिया की वास्तविकता उसका 'संघीय' होना है। वह काफी कुछ यूरोप की तरह राष्ट्रों का एक समुच्चय है। इसमें अनेक मज़बूत

राष्ट्रों का वजूद है जिनकी पर्याप्त सुचारु रूप से विकसित अपनी भाषाएँ हैं। वे मरने नहीं जा रही हैं! हिन्दुस्तान के राज्यतंत्र पर संघीय शक्तियों और एकत्ववादी शक्तियों के बीच के इस तनाव की प्रधानता है। उदाहरण के लिए, चैम्बर ऑफ कॉमर्स ने भाषायी राज्यों का विरोध किया था। उनका कहना था कि हमें सिर्फ सीमा-रेखाएँ खींच देनी चाहिए, जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका में किया गया है! जबकि हम सब जानते हैं कि भाषायी स्वायत्तता का आन्दोलन हिन्दुस्तान के सर्वाधिक सशक्त आन्दोलनों में से एक है। किसी भी समय में तकरीबन दस ऐसे क्षेत्र होते हैं जो भाषा के आधार पर स्वतंत्र राज्य की माँग कर रहे होते हैं!

ज़्यादातर हिन्दुस्तानी अगर बहुभाषी नहीं हैं, तो कम-से-कम द्विभाषी तो हैं ही। सारे आदिवासी द्विभाषी हैं। पण्डित रघुनाथ मुर्मू जैसा दक्षिण झारखण्ड का आदिवासी बौद्धिक सात भाषाएँ आसानी-से जानता है - हो, सन्थाली, मुण्डारी, नागपुरिया, उड़िया, बांग्ला और हिन्दी! सामान्यत: कम शक्तिशाली भाषायी समुदाय अधिक शक्तिशाली भाषायी समुदाय की भाषा सीख लेता है। इसी तर्क से उड़िया लोग बांग्ला सीख लेते हैं; मलयाली तमिल सीख लेते हैं और कन्नड़ लोग मराठी सीख लेते हैं! बेंगलुरु जैसे शहर में ज़्यादातर ऑटो ड्राइवरों की पहुँच अँग्रेज़ी समेत 4 से 6 भाषाओं तक होती है!

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अँग्रेज़ी हिन्दुस्तान में शक्तिशाली लोगों की भाषा है। हिन्दुस्तान में जिन लोगों की पहुँच अँग्रेज़ी तक होती है, उनके लिए 'प्रगति' के कई दरवाज़े खुल जाते हैं। लेकिन यह मानना गलत है कि हिन्दुस्तान में हर आदमी की इस तरह की लालसाएँ होती हैं। यहाँ तक कि जिन लोगों की ऐसी लालसाएँ होती भी हैं, वे भी अपनी भाषाओं तक अपनी पहुँच को तजने को तैयार नहीं होते। महानगरों तक में, ज़्यादातर आदान-प्रदान भारतीय भाषाओं में ही होता है - स्थानीय और हिन्दी के कुछ अन्य रूपान्तरों में (जिनमें उर्दू, कलकतिया हिन्दी, बम्बइया हिन्दी और दखिनी शामिल हैं)। बहुत-सी भाषाएँ बाज़ारपरक अर्थव्यवस्था तक में भी फल-फूल रही हैं - पुस्तकों, संगीत, फिल्मों, टीवी, सोशल मीडिया आदि में। कम्प्यूटर और स्मार्ट फोन के ई-फॉर्मेट्स में कई हिन्दुस्तानी भाषाएँ और लिपियाँ उपलब्ध हैं। इनमें सन्थाली और हो जैसी आदिवासी भाषाएँ तो शामिल हैं ही, हो सकता है और भी कई भाषाएँ एवं लिपियाँ हों। जिस किसी भी हद तक हम भविष्य का पूर्वानुमान कर सकते हैं, उसमें किसी भी सूरत में हिन्दुस्तानी भाषाएँ मरने वाली नहीं हैं!

भाषाएँ मरती हैं। पेगी मोहन भाषाओं के जन्म (क्रिओल) और मृत्यु

(त्रिनिदाद में भोजपुरी) की अध्येता हैं। बहुत छोटे-से समुदाय द्वारा बोली जाने वाली कुछ भाषाएँ मर चुकी हैं और मरती रहेंगी। भाषाएँ तब मरती हैं जब उन्हें बोलने वाला समुदाय भारी तनाव की स्थिति में होता है। हिन्दुस्तान के मामले में ऐसा नहीं है।

भाषा के कई उपयोग होते हैं जैसा कि लाल्टू ने ठीक ही उल्लेख किया है। यह महज़ व्यापारिक लेन-देन या विज्ञान और टेक्नोलॉजी तक सीमित नहीं है। लोगों को रोज़मर्रा ज़िन्दगी में एक या एक से अधिक भाषाओं की कई तरह के आदान-प्रदान के लिए ज़रूरत होती है जिनमें सांस्कृतिक और भावनात्मक ज़रूरतें शामिल हैं। हिन्दुस्तान जैसे बहुभाषायी देश में द्विभाषिकता या बहुभाषिकता आम बात है। लोग अपनी ज़रूरतों के हिसाब से सीखते हैं। और समाज इससे तालमेल बिठाता है तथा नई संस्थाओं का आविर्भाव होता रहता है - उदाहरण के लिए, अँग्रेज़ी और कई अन्य भाषाएँ सीखने के लिए रेपिडेक्स पुस्तक शृंखला, बोलचाल की अँग्रेज़ी के लिए ढेरों कक्षाएँ आदि।

स्कूली शिक्षा में नवाचारी कार्यक्रम भी काफी आम हैं। मैं 50 के दशक में इन्दौर के जिस स्कूल में पढ़ता था, वह कुछ अन्य चीज़ों के साथ-साथ हिन्दी माध्यम का स्कूल था। अँग्रेज़ी एक विषय के रूप में कक्षा-1 से पढ़ाई जाती थी। इसके बाद कक्षा-9 और 10 में विज्ञान के विषय अँग्रेज़ी माध्यम में पढ़ाए जाते थे। आज के दौर को देखें तो मैकमिलन, ऑक्सफोर्ड और ओरिएण्टल ब्लैक स्वान जैसे हिन्दुस्तानी स्कूली प्रकाशन गृहों में हर कक्षा के लिए बहुत बड़ी तादाद में अँग्रेज़ी प्रकाशन उपलब्ध हैं।

हाँ, अँग्रेज़ी महत्वपूर्ण है लेकिन उसी तरह अन्य भारतीय भाषाएँ भी हैं। हम सब जीवित बचे रहेंगे, बहुत-बहुत धन्यवाद पेगी!

टी. विजयेन्द्र: मैसूर में जन्मे, इन्दौर में पले-बढ़े और 1966 में आई.आई.टी., खड़गपुर से बी.टेक. किया। वे 'पीक ऑयल' के क्षेत्र में सक्रिय हैं और पीक ऑयल इंडिया और इकोलॉजाइस के संस्थापक सदस्य हैं। उन्होंने संसाधनों की कमी को लेकर एक किताब, निबन्धों की तीन किताबें, दो कहानी संग्रह, एक उपन्यास और एक आत्मकथा लिखे हैं। **ईमेल:** t.vijayendra@gmail.com

अँग्रेज़ी से अनुवाद: मदन सोनी: आलोचना के क्षेत्र में सक्रिय वरिष्ठ हिन्दी लेखक व अनुवादक। इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। इन्होंने उम्बर्तो एको के उपन्यास *द नेम ऑफ दि रोज़*, डैन ब्राउन के उपन्यास *दि द विंची कोड* और युवाल नोआ हरारी की किताब *सेपियन्स: अ ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ ह्यूमनकाइंड* समेत अनेक पुस्तकों के अनुवाद किए हैं।

चित्र: पूजा के. मैनन: *एकलव्य*, भोपाल में बतौर जूनियर ग्राफिक डिज़ाइनर काम किया है। वर्तमान में स्वतंत्र रूप से चित्रकारी कर रही हैं।

वापसी

सतीश बलराम अग्निहोत्री

'**ट्रिंग** ट्रिंग ट्रिंग!' श्यामली ने झुँझलाकर अलार्म बन्द किया और उनींदी आँखों से रसोई की ओर बढ़ चली, जाते-जाते उसने बगल के बिस्तर पर नज़र डाली और बुदबुदाई, "पता नहीं, हज़रत कब लौटे हैं।"

दरवाज़े पर दूधवाला बोतलें रख गया था। उन्हें लाकर श्यामली ने गैस पर दूध चढ़ाया। मेघना को सुबह-सुबह स्कूल जाना होता। उसे स्कूल बस में चढ़ाकर फिर वह स्वयं तैयार होती थी कॉलेज जाने के लिए। इस बीच नाश्ता भी बनता और डुखनी को हिदायतें भी मिलतीं – खाना क्या बनना है, सौदा क्या आएगा, कौन-से कपड़ों पर इस्तिरी होनी है। उसके निकलने तक प्रोफेसर शैलायन बिस्तर में ही रहते थे। उनका भी क्या! प्रयोगशाला पास और पढ़ाने का झंझट भी नहीं, जबसे उन्हें शोध के लिए तीन सालों की फेलोशिप जो मिल गई थी।

श्यामली इस फेलोशिप का मज़ाक उड़ाया करती, "निठल्लेपन के लिए तनख्वाह है ये!", पर इतना ज़रूर मानती थी कि प्रोफेसर उसकी दिनचर्या में बाधा नहीं डालते थे। मेघना के स्कूल जाने से पहले, उनके साथ सुबह-सुबह एक ग्लास नींबू पानी पीने के बाद श्यामली की छुट्टी, फिर लंच टेबल पर ही बातें होती थीं।

पर सच पूछा जाए तो श्यामली को पहले वाले दिन ही अच्छे लगते थे। तब प्रोफेसर उसे हर चीज़ के लिए हाँक लगाया करते थे, "श्यामू, मेरा लाइटर वापस करो! श्यामू, मेरे नोट्स पर तुम्हारी क्या राय है? तुम्हारा जर्नल कहाँ है?" से लेकर "कमीज़ कौन-सी पहनूँ? आज किसे बुलाया है डिनर पर?" तक, न जाने क्या-क्या।

"शुक्र है, अपना नाम मुझसे नहीं पूछ लेते!", श्यामली कहा करती। पर अब? तब के शैलायन और अब के शैलायन में ज़मीन-आसमान का फर्क आ गया था। खुशगवार, मिलनसार, हँसोड़, चेन-स्मोकर, महफिलों की जान – अंशु शैलायन, अब गम्भीर, अन्तर्मुख, महफिलों से कटे हुए, किताबों में डूबे.... सिगरेट की जगह मानो अध्यात्म ने ले ली हो। यह अध्यात्म का चक्कर हठात् नहीं पनपा था, न ही यह परिवर्तन प्रोफेसर में अचानक आया था। पिछले पाँच-छह सालों में वे धीरे-धीरे बदले थे। और बदल गई थी उनकी रुचियाँ, स्वभाव और शोध के विषय भी। रसायन शास्त्र से जीव विज्ञान और जीव

विज्ञान से जेनेटिक्स और उत्क्रान्तिवाद, और उन्हें तीन साल की फेलोशिप भी इन नई रुचि के विषयों में ही मिली थी।

* * *

श्यामली को आज भी याद है जब शैलायन की फेलोशिप का विषय उनके विभाग में चर्चा का विषय बन गया था। शैलायन के कई मित्रों ने श्यामली से पूछा भी था कि कहीं शैलायन परेशान तो नहीं हैं!!! कहीं उन दोनों के बीच कोई दरार तो नहीं आ रही! पहले तो श्यामली खुद अचम्भा व्यक्त करती, फिर सोचती कि यह थोड़े दिनों का चक्कर होगा पर शैलायन बदलते चले गए।

शुरू-शुरू में श्यामली से वे रसायन शास्त्र और जेनेटिक्स के आधुनिकतम आदान-प्रदान की चर्चा किया करते थे। पर जैसे-जैसे ये विषय गूढ़ बनते गए, उन दोनों के बीच संवाद घटने लगा। शैलायन अन्तर्मुख होने लगे। उनका अधिक-से-अधिक समय प्रयोगशाला में गुज़रने लगा।

हाँ, मेघना के साथ उनकी गहरी छनती। सारी व्यस्तताओं के और अपने कोकून में सिमट जाने के बावजूद उनके शाम के डेढ़ से दो घण्टों पर मेघना का पूरा एकाधिकार था। उसके साथ खेलना, उसकी पढ़ाई, कहानियाँ। श्यामली को रश्क इस बात का होता था कि उसके लिए कोई समय नियत क्यों नहीं है।

उसके विचारों को कुछ झटका-सा लगा। दूध उबलने को था। मेघना के ड्रेस पर इस्तिरी का हल्का हाथ फेरकर श्यामली ने उसे जल्दी तैयार होने को कहा और नींबू पानी के दो गिलास लेकर बेडरूम की ओर चल दी।

"नींबू पानी रखा हुआ है।" बिन्दी लगाते-लगाते उसने कहा। बिस्तर के लिहाफ में थोड़ी-सी हरकत हुई, शैलायन आदत के मुताबिक करवट बदलकर लिहाफ में और दुबक गए।

"उठो भी! रात को कितनी देर से आए?"

"यही कोई दो बजे," नींद से बोझिल स्वर लिहाफ के अन्दर से निकले। शैलायन ने हाथ बाहर निकाला और गिलास उठाया। आईने में बन-सँवरती श्यामली चीखी, "तुम्हारे हाथ को क्या हुआ है?"

चीख की आवाज़ मेघना ने भी सुनी और अन्दर आती डुखनी ने भी। दोनों दौड़े-दौड़े बेडरूम के पास आए। अब चीखने की बारी उनकी थी। आईने के सामने पत्ते की तरह थरथराती श्यामली और बिस्तर पर... बिस्तर पर प्रोफेसर शैलायन के कपड़े पहना हुआ एक बन्दर। 'हाँ, बन्दर ही तो है! पर कपड़े पहना हुआ, वह भी पापा के और आवाज़ भी उनके ही जैसी', यह सोचकर मेघना चिल्लाई।

"चिल्ला क्यों रही हो?"

बेचारी इस्मत को अभी भी याद है, किस बदहवास हालत में डुखनी ने उनके घर का दरवाज़ा खटखटाया था। आँखें मलते-मलते वे बिफरने जा ही रही थीं कि डुखनी दहाड़ मारकर रो दी थी, "दीदी... भूत... भूत... टोना... टोना..." सात दिन तक वह अस्पताल में पड़ी रही थी।

घबराई-सी इस्मत जब बगल के बंगले में घुसीं तो सामने का दृश्य देखकर वे भी अवाक-सी रह गईं। बिस्तर पर रोती श्यामली, अवाक खड़ी मेघना और श्यामली की पीठ थपथपाता और उससे बातें करता एक बन्दर!

उन्हें देखते ही मेघना उनसे लिपट गई, "आंटी! आंटी! पिताजी को देखो क्या हो गया है..." पिताजी...? इस्मत को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ, मगर गाउन तो शैलायन का ही था, खुद इस्मत ने उन्हें माउंट आबू से लौटने पर भेंट में दिया था। तभी बन्दर ने उन्हें सम्बोधित किया, "यार इस्मत, पहले दरवाज़ा बन्द कर ले।" मंत्रचालित और सम्मोहित-सी इस्मत ने पहले दरवाज़ा बन्द किया और वापस आकर फटी-फटी नज़रों से बन्दर... नहीं प्रोफेसर शैलायन को देखने लगीं।

"एक मेहरबानी करो, तुम अपना धीरज मत खोओ। देखो, मैं भी अपने आप पर काबू रखे हुए हूँ।" बन्दर के

गले से आवाज़ निकली।

"पर यह सब हो क्या रहा है?" इस्मत ने पूछा।

"यार, मुझे भी समझ में नहीं आ रहा है। मैंने भी आईना देखा है पर पता नहीं... शायद रात के प्रयोग में कुछ गड़बड़ हो गई है। लेकिन पहले तुम श्यामली को समझाओ।"

"प्रयोग में गड़बड़? पर कल रात जब मैं वापस लौटी तो तुम अध्यात्मानन्द जी के साथ थे।"

"यह उसी मरदूद का काम है दीदी!" श्यामली रो पड़ी, "उसी ने शैलायन का ब्रेनवॉश किया है! और जादू-टोना भी। अब, देखो... उसे तो..."

"श्यामू, स्टॉप इट!" शैलायन गरजे, "बचकानी बातें मत करो!"

इससे पहले कि बात बढ़ती, इस्मत आगे आईं, "पहले इससे निपटने की बात सोचो, यह तो एक विकट समस्या है। मैं स्टीव को बुलाती हूँ।" एक बार संयत हो जाने के बाद उनका दिमाग काफी तेज़ दौड़ा। बात छोटी-मोटी नहीं बल्कि धमाकेदार थी। उसे फैलने से रोकना था, कम-से-कम कुछ समय के लिए। इस्मत मेघना को दूसरे कमरे में ले गईं, उसे शान्त रहने के लिए समझाया, खुद के बंगले दौड़ी-दौड़ी गईं, अपने पति, स्टीव, को जल्दी में थोड़ी-बहुत बात समझाई और डुखनी के पास अपने बड़े लड़के को तैनात किया। उसे सख्त हिदायत दी कि डुखनी को और किसी के सामने बोलने न दे और फौरन डॉक्टर को फोन कर घर बुला ले।

प्रोफेसर शैलायन के घर के अहाते में घुसते-घुसते इस्मत और स्टीव को श्रीमान चटर्जी ने पकड़ा, "जोड़ी कहाँ सुबह-सुबह? और यह चीखने की आवाज़ क्यों आ रही थी?" श्री चटर्जी पूरे केन्द्र में 'बी.बी.सी.' नाम से प्रसिद्ध थे। यह महज़ इत्तेफाक ही था कि उनके नाम के आद्यक्षर भी यही थे 'बिनोद बाला चटर्जी'।

"कोई मारपीट नहीं हुई भैया, बस श्यामली की साड़ी पर तिलचट्टा चढ़ गया था।" स्टीव बोले। उन्हें पता था कि शाम तक तिलचट्टे की खबर पूरी कॉलोनी में फैल चुकी होगी। शैलायन को देखकर स्टीव भी सकते में आ गए, पर उन्होंने अपने आप को सँभाला। उन्हें वहीं छोड़कर इस्मत ने शैलायन से कहा, "सुनो, डायरेक्टर को कम-से-कम खबर कर देते हैं और आज तो सी.एल. ले ही लो। लेकिन तुम पहले मुझे बताओ कि हुआ क्या है।"

जो कुछ उनकी समझ में आया, वह यह था कि प्रोफेसर शैलायन अपनी शोध के सिलसिले में उत्क्रान्ति के अध्ययन में जुटे थे। इस दौरान उनका रुझान भारतीय अध्यात्मिक साहित्य की ओर भी बढ़ा, खासकर जब से वे स्वामी अध्यात्मानन्द के सम्पर्क में आए। अध्यात्मानन्द खुद न्यूक्लियर विज्ञान के एक विद्वान थे,

पर उन्होंने सब कुछ त्याग कर आश्रम जीवन ग्रहण कर लिया था। इन दोनों को श्री अरविन्द की अतिमानव की कल्पना ने आकर्षित किया था और उसे मूर्त रूप देने के लिए वे पिछले दो सालों से लगे हुए थे।

"और कल रात हमारा एक अहम प्रयोग होने वाला था जिसमें हम प्रकृति में होने वाली उत्क्रान्ति की धीमी गति से परे निकलकर, ऐसी छलाँग लगाने वाले थे जिससे अतिमानव का निर्माण होता।"

"और जनाब, आप बन गए बन्दर! इसे कहते हैं 'चौबे बनने चले, दुबे बनकर लौटे'!" इस्मत ने सर पर हाथ मारा, "पर वहाँ से घर आए तो वॉचमैन ने नहीं देखा तुम्हें?"

"अरे नहीं यार! तब तक मैं ठीक था! तब तक क्या, गाउन पहनकर सोने तक ठीक था, पर सवेरे..."

"और स्वामी जी कहाँ हैं?"

"यही तो घोटाला हुआ है! उन्हें आज तड़के जाना था तो हमने रात को प्रयोग सम्पन्न किया और वे सुबह 5:30 की उड़ान से चले गए हैं।"

"पर उन्हें जाना कहाँ है?"

"हिमालय में कहीं अज्ञात जगह पर रहेंगे और कोई एक साल बाद ही लौटेंगे।"

"भले आदमी! उन्हें रोकना चाहिए और अगर इंडियन एयरलाइंस की उड़ान है तो विलम्ब अवश्य होगा।"

पर हवाई अड्डे के पूछताछ कक्ष

ने बड़े फक्र के साथ बताया कि उड़ान ठीक समय पर जा चुकी थी। यही नहीं, उसे जम्मू पहुँचे कोई डेढ़ घण्टा हो चुका था।

डॉक्टर दोराईस्वामी को जब सुबह-सुबह इस्मत का फोन आया तो उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा था कि इस्मत कैसी अति गोपनीय और महत्वपूर्ण बात पर उनसे चर्चा करने आ रही हैं। उन्होंने तो यहाँ तक कह डाला था कि अगर बात वाकई अ.गो.मा. न हुई तो अगला इंक्रीमेंट बन्द कर दूँगी। पर जब इस्मत ने उन्हें सारी बात बताई तो वे कुछ क्षणों तक फटी-फटी आँखों से उन्हें देखती रह गईं और फिर झटपट वे कपड़े बदलकर इस्मत के स्कूटर पर बैठकर शैलायन के घर की ओर रवाना हो चुकी थीं।

* * *

श्रीमान चटर्जी यानी बी.बी.सी. की अनुभवी आँखों से यह छुपा न रह सका। सूट-बूट के बिना घर से बाहर न निकलने वाली संस्थान की निदेशक डॉ. दोराईस्वामी का महज़ सादी पोशाक में आना और वह भी इस्मत के स्कूटर पर... दाल में कुछ काला ज़रूर था। मेघना भी स्कूल नहीं गई थी। श्यामली चीखी ज़रूर थी। इस्मत और स्टीव जल्दी-जल्दी शैलायन के घर में घुसे थे और डुखनी नज़र नहीं आ रही थी। ज़रूर झगड़ा... नहीं, मारपीट पर नौबत आई होगी... हे ईश्वर! श्यामली को घायल तो नहीं कर दिया? वैसे भी पिछले कुछ सालों से जोड़े में दरारें पड़ती लग रही थीं। ज़रूर घायल कर दिया होगा, तभी तो डायरेक्टर के आने की नौबत आ गई है। उनके तर्क को और पुष्टि मिली जब डॉक्टर धुर्वे की कार आती नज़र आई। पर यह क्या? उनकी कार इस्मत के घर पर? पर वे उतरे तो बैग लेकर ही हैं। मानव, इस्मत का बड़ा लड़का, उन्हें लेकर अन्दर गया है। उनकी उत्सुकता और बढ़ी। स्टीव और इस्मत अभी तक श्यामली के घर में ही हैं। तो क्या श्यामली घर छोड़कर यहाँ आ गई है?

उन्होंने मामले की छानबीन के लिए इस्मत के घर का रुख किया। हाथ में चीनी की कटोरी ले चटर्जी अंकल को देखकर मानव को थोड़ा आश्चर्य हुआ। "नमस्ते अंकल, सुबह-सुबह?"

"नहीं बेटे, यह चीनी ले गया था तो वापस करने आया हूँ। माँ नहीं हैं?"

"जी नहीं, वे शैलायन अंकल के यहाँ गई हैं। मैं रख लेता हूँ चीनी।"

मानव के चेहरे पर 'कृपा करके फुटिए' का भाव साफ था, पर अंकल को अपने काम की चीज़ दिख गई थी – डॉक्टर धुर्वे किसी को देख रहे थे पर वह श्यामली नहीं थी।

"अच्छा बेटे, यह रख लो। वो मेघना तो यहाँ नहीं आई?"

"अरे नहीं अंकल, वह तो डुखनी है।" मानव ने उनकी निगाह ताड़ ली। "उसके सर में चोट आ गई थी और अंकल का फोन खराब था तो..."

"अच्छा-अच्छा, मैं चलूँ..."

"जी नमस्ते, अंकल!" चैन की साँस लेकर मानव ने दरवाज़ा बन्द किया पर अंकल का विचार-चक्र और तेज़ी-से चलने लगा।

* * *

जब तक शैलायन के साथ हुए हादसे की खबर विज्ञान और टेक्नोलॉजी विभाग के सेक्रेटरी, उनके ज़रिए मंत्रिमण्डल सचिव, प्रधानमंत्री के निजी सचिव और फिर खुद प्रधानमंत्री तक पहुँची, तब तक संस्थान के बी. बी.सी. के ज़रिए आधी कॉलोनी को पता चल चुका था कि श्यामली और शैलायन में झड़प हुई है। श्यामली को प्रोफेसर ने ज़रूर घायल कर दिया है और हो-न-हो, इसकी वजह है कि श्यामली ने शैलायन और डुखनी को रंगे हाथों पकड़ लिया है। आज भी श्रीमान शैलायन कभी-कभी हँसकर कह देते हैं, "दादा, वह देखो मेरी गर्ल फ्रेंड।" ऐसे में श्रीमान चटर्जी के पास झेंपने के अलावा कोई चारा नहीं रहता।

पर उस दिन तो जितने मुँह उतनी बेसिर-पैर की बातें। और जब विभागीय सचिव और मंत्रिमण्डल सचिव की गाड़ियाँ, उनके आगे-पीछे मोटरसाइकिल पर दो कमाण्डो राइडर और लाल बत्ती वाली पेट्रोलिंग जीप प्रोफेसर शैलायन के घर के बाहर रुकीं तो सबको विश्वास हो गया था कि बात बहुत ऊपर तक पहुँच गई है।

मंत्रिमण्डल सचिव श्री थेजा अंगामी अनुभवी प्रशासक थे पर ऐसी घटना से उनका भी पाला नहीं पड़ा था। उन्होंने सबसे पहला काम तो यह किया कि प्रोफेसर शैलायन के घर पर सादी पोशाक में सुरक्षा गार्ड तैनात कर दिए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मामला जो भी हो, उनकी दृष्टि से शैलायन की सुरक्षा सबसे अहम बात थी। उनके इस परिवर्तन का समाचार अधिक देर तक छुपाया नहीं जा सकता था। उसके बाद पता नहीं किन देशों की सुरक्षा एजेंसियाँ उन्हें उड़ाने के चक्करों में लग जाएँ। उन्होंने डॉक्टर दोराईस्वामी को सलाह दी कि इस बात को कम-से-कम कुछ घण्टों तक गोपनीय रखा जाए। इस बीच वे स्वयं प्रधानमंत्री से बात कर लेंगे और यह घर तब तक सुरक्षा गार्डों की देखरेख में रहेगा। जाने से पहले उन्होंने श्यामली की पीठ थपथपाकर उसे ढाढ़स बँधाया, "धीरज रखो, कोई रास्ता ज़रूर निकल आएगा।" मेघना को उठाकर उसके सर पर हाथ फेरकर कहा, "ब्रेव गर्ल!" और डॉक्टर रंगाराव को लेकर सीधा प्रधानमंत्री के निवास की ओर चल पड़े। तब तक प्रोफेसर शैलायन के घर के बाहर छोटी-सी

भीड़ इकट्ठी हो गई थी।

इस्मत ने जब भीड़ में फैलती खबर को सुना तो सर पीटकर रह गईं। दोराईस्वामी ने उन्हें सही माजरा नहीं बताने का कड़ा निर्देश दिया था। बिना 'ऊपरी आदेश' के वे कोई खतरा मोल नहीं लेना चाहती थीं। झुँझलाई इस्मत ने श्यामली को परिस्थिति की गुरुता बताई। अन्त में तय हुआ कि श्यामली अपने आप को सँभालें, स्टीव के साथ इस्मत के घर जाएँ और उत्सुक लोगों को इतना ही बताएँ कि शैलायन ने एक बहुत ही बड़ा आविष्कार किया है। यही बात इस्मत और डॉक्टर दोराईस्वामी दोहराएँ और बाकी प्रश्नों पर चुप्पी साधी जाए। तिलचट्टे की कहानी बरकरार रहे।

* * *

तरकीब काफी हद तक काम कर गई पर सच पूछा जाए तो शंकालु पड़ोसी दूसरे दिन की प्रेस कॉन्फ्रेंस तक आश्वस्त नहीं हुए थे। विज्ञान भवन में हुई पत्रकार परिषद की कॉन्फ्रेंस में तिल रखने की जगह नहीं थी। प्रोफेसर शैलायन ने न अपने प्रयोग के बारे में विस्तार से बताया, न स्वामी अध्यात्मानन्द के बारे में। वे बस इतना कहकर चुप्पी साध गए कि कुछ नए प्रयोगों के दौरान किसी अज्ञात कारणों से उनमें यह परिवर्तन आ गया है। फिर भी, यह परिवर्तन ही पत्रकारों और आम जनता के लिए अत्यन्त सनसनीखेज़ था।

अगले कई महीनों तक शैलायन एक अद्‌भुत अजूबा बने रहे। कइयों ने उन्हें फ्रॉड कहा, कइयों ने इसे जादू-टोना बताया। श्यामली और मेघना की निजी ज़िन्दगियाँ भी इसी उत्सुकता की बलि चढ़ गईं। खैर, श्यामली ने तो छुट्टी ले ली पर मेघना का स्कूल जाना दूभर हो गया।

पर इन सबसे अलग, प्रोफेसर शैलायन चुनिन्दा वैज्ञानिकों के एक दल के साथ उन में आए परिवर्तन के गोपनीय अध्ययन में लगे रहे, और राष्ट्रीय जैविक अनुसन्धान केन्द्र का सारा क्षेत्र एक गोपनीय गुत्थी बनकर रह गया। एक परिवर्तन जो अध्ययन दल को बहुत ही जल्दी नज़र आया, वह था प्रोफेसर शैलायन की प्रखर प्रतिभा, जो उनके पहले की प्रतिभा से कई गुना अधिक थी। उन्होंने गणित के ऐसे-ऐसे समझ न आने वाले प्रमेयों को सुलझाना आरम्भ किया कि अध्ययन दल और दुनियाभर के वैज्ञानिकों ने दाँतों तले उँगलियाँ दबा लीं। उन्होंने उष्मागतिकी यानी थर्मोडायनेमिक्स के सिद्धान्तों के जटिल जीव-कोशिकाओं के अध्ययन में उपयोग करने के नए रास्ते सुझाए। डीएनए और आरएनए की संरचना के कई गूढ़ प्रश्नों के समाधान के लिए प्रयोग निर्धारित किए; संक्षेप में, वे ज्ञान की ऐसी खान बन गए जिसने अध्ययन दल को 'लूट सके तो लूट' की स्थिति में ला दिया।

लेकिन उसके साथ ही वे बहुत शान्त और निर्विकार प्रकृति के होने लग गए और एक निश्चित समय तक के काम के बाद बाकी समय खेलने, बागवानी, प्रार्थना वगैरह में लगाने लगे। उनके सारे काम ही अब चर्चा का विषय बन रहे थे। टीवी पर उनके बैडमिंटन मैच का लाइव प्रसारण हुआ जहाँ उन्होंने राष्ट्रीय चैंपियन आहूजा के छक्के छुड़ा दिए। उन्हें भी अब इस नए अवतार में मज़ा आने लगा था। उनका नाम पड़ा था 'सुपर इंटेलिजेंट चिम्पैंज़ी'।

पर अन्दर ही अन्दर वे इस बात पर विचार करते रहते थे कि यह परिवर्तन कैसे हुआ। उनकी गणना के अनुसार उन्हें अतिमानव में बदलना था। बुद्धि और मेधा के हिसाब से तो परिवर्तन सही दिशा में हुआ था, पर चिम्पैंज़ी की काया? इसका अनुमान स्वयं अध्यात्मानन्द जी भी नहीं लगा पाए थे। प्रोफेसर शैलायन ने उत्क्रान्ति पर जितनी पाठ्य सामग्री थी, छान मारी। अपने सहयोगी वैज्ञानिकों के साथ चर्चा की, विश्व के चोटी के जीवशास्त्री उनसे मिलने आए पर यह पहेली, पहेली ही बनी रही।

इस बीच श्यामली ने अपने आप को सँभाल लिया था। उसे पता नहीं था कि वह इस परिस्थिति से कभी उबर भी पाएगी या नहीं। वह अध्यात्मानन्द जी को मन ही मन इस सारी घटना के लिए दोषी व ज़िम्मेदार ठहराती, पर शैलायन से उसने प्रकट तौर पर कुछ नहीं कहा।

मेघना भी कुछ दिनों बाद सहज हो गई थी। पापा के साथ उसके डेढ़ से दो घण्टे पहले की ही तरह गुज़रते। कई बार तो उसे ज़्यादा मज़ा आता जब पापा पेड़ पर आनन-फानन में चढ़ जाते और उसे पीठ पर लेकर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर कूद जाते। कुछ समय के लिए यह परिवर्तन बुरा नहीं था, पर पापा हमेशा के लिए बन्दर ही रह गए तो?

श्यामली को वह दिन आज भी याद है जब शैलायन के दिमाग में एक नई खुराफात उमड़ी थी। मेघना उस दिन न जाने कहाँ से पिछले ओलम्पिक खेलों का एक वीडियो टेप उठा लाई थी। खेलों का शानदार समापन समारोह देखते-देखते उसने मुँह बिचकाया और बोली, "पापा! पापा! हम लोगों को क्यों एक भी मेडल नहीं मिलता?"

"मिला करता था बेटे, हॉकी में मिला करता था, पर वह भी गया। बेटे, हमारे यहाँ खेलकूद को महत्व नहीं दिया जाता।"

"लेकिन पापा, सच्ची बोलूँ, लॉन्ग जम्प में तो आप इन से अच्छा कूद लेते हैं।"

"लॉन्ग जम्प ही क्यों, हाई जम्प में क्या मैं किसी से कम हूँ?"

"पापा, आप क्यों नहीं भाग लेते हैं इन खेलों में? कम-से-कम एक-दो मेडल तो हमें मिल ही जाएँगे।"

"मैं भाग लूँ? मैं!?" हँसते-हँसते शैलायन की आँखों में आँसू आ गए। "बेटे, मैं अब इस उम्र में..." पर अचानक उनकी हँसी में ब्रेक लग गया और उन्होंने कहा, "क्यों नहीं! श्यामू क्या खयाल है तुम्हारा?"

"मेरा खयाल है कि तुम सठिया गए हो!"

"सठिया गया? बैडमिंटन में आहूजा की क्या हालत बनाई थी, याद है?"

"हाँ-हाँ, पर वह प्रदर्शन मैच था। ओलम्पिक में तुम्हें कौन भाग लेने देगा? तुम तो..."

"रुक क्यों गई? कह डालो कि तुम बन्दर जो ठहरे! पर मैं तुम्हें कोई दोष नहीं देता, वे लोग भी शायद यही कहें।"

अपनी रुलाई को रोकते हुए श्यामली अपने कमरे में भागी चली आई। आज पहली बार ऐसी बात उसकी ज़ुबान पर आई थी। शैलायन ने उसकी बात का बुरा नहीं माना था।

अगले महीनेभर मेघना की शामें कितनी जल्दी गुज़रीं, यह उसे भी पता नहीं चला। वह खुशी-खुशी अपने पापा के टॉप सीक्रेट काम में मदद करती रही। महीने के अन्त में, जब

ओलम्पिक में तुम्हें कौन भाग लेने देगा? तुम तो..."

"रुक क्यों गई? कह डालो कि तुम बन्दर जो ठहरे! पर मैं तुम्हें कोई

श्री थेजा अंगामी ने शैलायन की माँग सुनी तो उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। प्रोफेसर शैलायन ने उन्हें अपनी बात समझाई और गुप्तता का

आश्वासन लिया। श्री अंगामी ने फौरन खेल प्राधिकरण से बात कर अपने निजी उद्देश्य के लिए एक खेल कोच मँगवाया और उसे शैलायन के पास भेज दिया।

* * *

राबिया जमाल एक जानी-मानी कोच थीं। एथलेटिक्स में उनकी टक्कर के बहुत कम कोच थे। भारतीय टीम के साथ पिछले ओलम्पिक में जाकर आई थीं और मेडल न मिलने की मायूसी को उन्होंने गहरे झेला था। फिर भी शैलायन के प्रस्ताव को सुनकर वह ठहाका मारकर हँसी थीं, "बाबूजी, तुस्सी पार्ट लोगे?" फिर जब हँसी कम हुई तो उन्होंने वही बात दोहराई, शैलायन के बन्दर होने की। शैलायन ने उन्हें समझाया, कानूनी तौर पर वह अब भी भारतीय नागरिक था, उसे वोट देने का अधिकार था, राशन कार्ड पर नाम था, पढ़ना-लिखना सब अपनी जगह पर था और बुद्धिमत्ता माशाअल्लाह, बहुत थी, फिर वह बन्दर कैसे?

राबिया को बात कुछ जँची और जैसे-जैसे उन्होंने शैलायन की लम्बी कूद, ऊँची कूद, बाधा दौड़ और 110 मीटर दौड़ की करामात देखी, उनकी बाँछें खिलती गईं, उनकी आँखों के सामने मेडल तैरने लगे। अल्लाह-ताला ने चाहा तो पोल वॉल्ट, जिमनास्टिक, पेंटाथलॉन और न जाने क्या-क्या, बशर्ते...

"बाबूजी, बशर्ते आपको परमिशन मिले।"

"वह ज़िम्मा मेरा रहा बीबीजी,

तुस्सी कोच करो मैनू।"

दो महीने के अथक परिश्रम के बाद राबिया ने इस नए विद्यार्थी का लोहा मान लिया। अगर सचमुच इन्हें भारतीय टीम में शामिल कर लिया जाए तो आधा दर्जन मेडल तो आराम-से मिलेंगे। पर क्या उन्हें शामिल किया जा सकेगा? "क्यों न अध्यक्ष जी से बात कर ली जाए?" शैलायन ने इसका ज़िम्मा खुद पर लिया।

* * *

खेल विकास प्राधिकरण के अध्यक्ष थे मलाई बाबू। इन बेचारे का असली नाम मलय गोस्वामी था पर उनके तिकड़मी गुणों से खीझे हुए विरोधियों ने उसे बिगाड़ डाला था और जैसे-जैसे मलाई हड़प जाने के उनके हथकण्डे प्रकट होने लगे, यार दोस्तों ने भी यह नाम स्वीकार कर लिया था। ठण्डे दिमाग में और चाणक्यीय कूटनीति में उनका कोई सानी मिलना मुश्किल था।

पर ठण्डे दिमाग वाले मलाई बाबू को भी कैबिनेट सेक्रेटरी द्वारा दी गई सीमित और गुप्त पार्टी में अपना दिमाग ठण्डा रखने के लिए व्हिस्की के पैग पर पैग चढ़ाने पड़ गए थे। प्रोफेसर शैलायन का भारतीय टीम में भाग लेना? वह भी ओलम्पिक्स में? उन्होंने सोचने के लिए कुछ मोहलत माँगी, बात सिर्फ उनके मान जाने की ही नहीं थी, प्राधिकरण के अन्य सदस्यों को भी तो बताना होगा।

नतीजतन, एक आपात बैठक बुलाई गई। भारतीय खेल विकास प्राधिकरण के सदस्यों को इस आपात बैठक का कारण समझ में नहीं आया। कई शंकाएँ और कुशंकाएँ उनके मन में उभरीं। न जाने कौन किसका पत्ता काटने के चक्कर में है। हर सदस्य अन्य सदस्य को यही बता पाया कि बैठक की वजह उसे भी नहीं मालूम और अध्यक्ष महोदय ने फोन पर सबको वही एक जवाब दिया था – "वहीं आओ तो पता चले।" हाँ, अपने चहेते मित्र प्रतिफल को इतना उन्होंने ज़रूर कहा था, "यार! इसमें रत्ती भर की राजनीति नहीं है, जिसकी चाहे कसम दिलवा डालो।"

जब अध्यक्ष महोदय ने अपनी तसल्ली कर ली कि सब की उत्सुकता चरम सीमा पर है तो उन्होंने राज़ खोला और सदस्यों को प्रोफेसर शैलायन की कल्पना बताई। यह भी बताया कि राबिया जमाल उन्हें परख चुकी हैं और ट्रेनिंग दे चुकी हैं। पहले तो अधिकांश सदस्य हँसते-हँसते वैसे ही लोटपोट हो गए जैसे राबिया जमाल हुई थीं, पर जैसे-जैसे राबिया ने उनके सामने आँकड़ों की बरसात शुरू की, हँसी की जगह चुप्पी, फिर विस्मय और फिर अविश्वसनीयता ने ले ली। राबिया उस अविश्वसनीयता की दवा अपने साथ लाई थीं, उन्होंने वीसीआर का बटन ऑन किया। अब आधे घण्टे की छुट्टी।

टेप के खत्म हो जाने के बाद हर सदस्य का चेहरा देखने लायक था। मौन को पहले तोड़ा षण्मुगम ने, "यह तो... यह तो... दिस इज़ क्रेज़ी!"

"क्रेज़ी या नॉट क्रेज़ी, सच आपके सामने है," राबिया जमाल ने कहा।

"पर सवाल है, इसका आप करेंगे क्या? शैलायन को थोड़े ही हमारी टीमों में शामिल किया जा सकता है। वह आदमी नहीं बन्दर है। उसे प्रतियोगिता में कैसे...?" चतुर्वेदी जी बोलीं। कई सदस्यों ने उनकी हाँ-में-हाँ मिलाई।

"दोस्तो, इसलिए तो मैंने यह आपात बैठक बुलाई है और वह भी इतनी गुप्तता में," अध्यक्ष ने कहा। "अब मेरी बात गौर से सुनिए। पहली बात तो यह है कि ओलम्पिक में हमारे देश का प्रदर्शन एक भावनात्मक मामला है। सब जानते हैं कि यह अच्छा नहीं रहा है। इस प्राधिकरण को बने भी दशक बीत गए लेकिन परिणाम उतने अच्छे नहीं निकल रहे। दूसरी ओर इस प्रोफेसर का प्रदर्शन आपने अभी वीसीआर पर देखा ही है। इसमें तो कोई शक ही नहीं कि यह अच्छा है, वजह चाहे कुछ भी हो। अब अगर शैलायन अपनी बात पर अड़ा रहा तो हमारे नकार देने की स्थिति में वह ज़रूर अन्य दरवाज़े खट-खटाएगा। अगर उसे हर किसी ने मना किया तो अलग बात है, पर मान लीजिए किसी ने उसे तरजीह दे दी तो उसकी खोज का सेहरा उनके सर पर बँधेगा। आप मेरी बात...."

"अरे मलाई बाबू, साफ-साफ कह दीजिए न कि ओलम्पिक एसोसिएशन वाले कहीं इनको उड़ाकर ले गए तो हम लोग टापते रह जाएँगे।" अखण्ड चौधरी की भाषा उनके नाम के अनुरूप ही थी, पर उनकी बात में वज़न था।

"आपने मेरे मुँह की बात छीन ली, अखण्ड बाबू! मेरा विचार यही था। आप ज़रा सोचिए, अगर एसोसिएशन ने मना कर दिया तब तो हमारा कुछ नहीं बिगड़ना, पर अगर उन्होंने हाँ कर दी तब तो शैलायन की शोहरत में मुख्य हिस्सेदार हम ही होंगे।"

बात सदस्यों को जँची। अन्त में, तय यही हुआ कि प्राधिकरण क्यों शैलायन को नकारकर ज़िम्मेदारी मोल ले। बेहतर होगा कि उनका केस भारतीय ओलम्पिक एसोसिएशन को सिफारिश के साथ भेज दिया जाए।

पर तिकड़मी दिमाग पर सिर्फ मलाई बाबू का अधिकार थोड़े ही था। भा.ओ.ए. के अध्यक्ष राजा रिपुदमन सिंह भी ताड़ने वाली नज़र रखते थे। फर्क यही था कि उनका दिमाग उतना ठण्डा नहीं था, अतः जब प्राधिकरण की तरफ से शैलायन के भाग लेने का प्रस्ताव आँकड़ों और भारी-भरकम सिफारिश के साथ आया तो उन्होंने उसे ठुकराने का निश्चय किया।

"अरे ज़रा सोचो तो, प्राधिकरण इसे अपना कैंडिडेट दिखाकर वाहवाही लूटना चाहता है, चाहे काम इन्होंने रत्ती भर भी न किया हो।"

"रत्ती भर तो किया है, बड़े साहब! उस राबिया जमाल से कोचिंग करवाकर।" उनके एक समर्थक ने चुटकी ली।

"वह राबिया भी..." बड़े साहब ताव खाकर रह गए। "कमबख्त पूरी एहसान फरामोश है, इतनी फॉरेन ट्रिप्स दिलवाई हैं उसे, फिर भी यह नहीं सोचा कि हमें बताती। आखिर ओलम्पिक टीम में शामिल करना है तो ओलम्पिक एसोसिएशन के ज़रिए आती! क्या हम लोग मना करते? पर नहीं, खेल प्राधिकरण की वफादार बनी है।"

* * *

और इस प्रकार व्यूह रचना हो गई। भारतीय ओलम्पिक एसोसिएशन ने प्राधिकरण का प्रस्ताव यह कहकर ठुकरा दिया कि शैलायन को टीम में शामिल करना नियमों में नहीं बैठेगा। राबिया जमाल के ज़रिए जब प्राधिकरण ने यह खबर प्रोफेसर शैलायन तक पहुँचाई तो उन्हें ज़्यादा आश्चर्य नहीं हुआ। उनसे अधिक मायूस तो खुद राबिया नज़र आ रही थीं। शुरू में उन्हें शैलायन का प्रस्ताव चाहे जितना बेतुका लगा हो पर अब उन्हें इसमें काफी गहरी दिलचस्पी हो

गई थी। काफी देर तक वे शैलायन के साथ माथापच्ची करती रहीं कि अब क्या किया जाए। शैलायन का यही सुझाव था कि प्राधिकरण को एसोसिएशन से यह पूछना चाहिए कि वे कौन-से नियम हैं जिनके तहत उन्होंने शैलायन को टीम में शामिल करने से इन्कार किया है। दूसरी ओर, राबिया को पता था कि प्राधिकरण को ऐसा करने में कोई खास दिलचस्पी नहीं है। अन्त में, दोनों ने यह तय किया कि फिलहाल शैलायन प्राधिकरण को ही चिट्ठी लिखें और इन नियमों के बारे में पूछें।

जो बात शैलायन जाते हुए राबिया से छुपा गए थे, वह यह थी कि उन्हें ऐसी नकार का अन्देशा था इसलिए उन्होंने पिछले कुछ दिनों में इस प्रश्न के कानूनी पहलू छान मारे थे। यही नहीं, उन्होंने इस विषय पर कानूनी सलाह लेने की भी सोची थी। इत्तेफाक से इस्मत का देवर मैथ्यू, देश की प्रसिद्ध वकील श्रीमती एस.एफ. हरि का जूनियर था। अब समय आ ही गया है, उन्होंने सोचा, कि श्रीमती हरि जी से मिला जाए।

जारी...

सतीश बलराम अग्निहोत्री: भारतीय प्रशासनिक सेवा के भूतपूर्व अधिकारी और अब आई.आई.टी. मुम्बई में प्राध्यापक। जन्म रत्नागिरी ज़िले के देवरुख गाँव में हुआ। बचपन बिहार के दरभंगा शहर में गुज़रा जहाँ स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई की। इसके बाद आई.आई.टी. मुम्बई से फिज़िक्स और फिर पर्यावरण विज्ञान में एम.टेक. किया। 1980 से भारतीय प्रशासनिक सेवा में ओडिशा राज्य एवं केन्द्र सरकार में कई विशिष्ट पदों पर 35 साल सेवारत रहे। हिन्दी में विज्ञान कहानियाँ और लेख लिखने की शुरुआत तब की जानी-मानी पत्रिका 'धर्मयुग' से हुई। यह विज्ञान-कथा भी उसी युग में लिखी गई। व्यंग्य रचनाएँ भी लिखते रहते हैं। सम्पर्क - satishagnihotri1955.in

सभी चित्र: उर्वी: चित्रकार, विज़ुअल कलाकार और डिज़ाइनर हैं। सृष्टि इंस्टिट्यूट ऑफ आर्ट एण्ड डिज़ाइन टेक्नोलॉजी, बैंगलोर से अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद अब वे अपने काम के ज़रिए एनिमेशन, मूविंग इमेजिज़, कहानी कहन और कविता का सहारा लेते हुए शिक्षा, सामाजिक न्याय और संरक्षण को जानने-समझने की कोशिश कर रही हैं।

सवालीराम

सवाल: समुद्र में आने वाले तूफानों का नामकरण कैसे किया जाता है?

जवाब: समुद्री तूफानों को नाम देने की यह प्रथा बहुत पुरानी नहीं है। पिछले बीस सालों को छोड़ दिया जाए तो इससे पहले जितने भी तूफान भारत के पूर्वी और पश्चिमी तट पर आए हैं, उनके नाम नहीं हुआ करते थे। उन्हें सामान्यतः किसी नम्बर या बिना नम्बर से पहचान दी जाती थी, जैसे गुजरात 1998 या उड़ीसा 1999 आदि (कृपया बॉक्स देखिए)।

दुनिया में चक्रवातों से होने वाली भारी तबाही से सुरक्षा पाने या तबाही को न्यूनतम करने के लिए विश्व मौसम विज्ञान संगठन (वर्ल्ड मिटियोरोलॉजिकल ऑर्गेनाईज़ेशन, डब्लू.एम.ओ.) की देखरेख में 6 क्षेत्रीय विशिष्ट मौसम विज्ञान केन्द्र बनाए गए। इसमें उत्तरी हिन्द महासागर इलाके के लिए भारत समेत 12 अन्य देशों को मिलाकर एक क्षेत्रीय केन्द्र बनाया गया है। इस केन्द्र का प्रमुख काम है उत्तरी हिन्द महासागर में उठने वाले तूफानों को पहचानना, उनकी गति एवं दिशा के आधार पर सभी देशों को जानकारी देना, सलाह देना, आपदा प्रबंधकों, तकनीकी टीम, मिडिया और जन साधारण को समय रहते अलर्ट करना ताकि तबाही को न्यूनतम किया जा सके।

वर्तमान में, उत्तरी हिन्द महासागर क्षेत्र में शामिल प्रमुख देश इस प्रकार हैं – भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यांमार, श्रीलंका, मालदीव, ओमान, थाईलैंड, ईरान, कतर, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, यमन आदि। दुनिया के नक्शे में इन देशों को देखेंगे तो आपको समझ आएगा कि उत्तरी हिन्द महासागर के तहत कौन-से प्रमुख सागर और खाड़ियाँ शामिल हो रहे हैं।

वैसे तो विश्व मौसम विज्ञान संस्थान ने 1953 से ही कुछ इलाकों में समुद्री तूफानों के नामकरण की शुरुआत कर दी थी। परन्तु सन् 2000 में मस्कट में आयोजित पैनल फॉर ट्रॉपिकल सायक्लोन की एक बैठक में उत्तरी हिन्द महासागर, अरब सागर, बंगाल की खाड़ी आदि में आने वाले तूफानों के नामकरण पर सहमति बनी थी। उस समय के सदस्य देशों से कहा गया कि वे तूफानों के नामकरण के लिए 8-8 नामों की एक सूची पैनल के समक्ष

समुद्री तूफानों के नामकरण का इतिहास

समुद्र के साथ इन्सान का नाता बहुत पुराना है। तटीय इलाकों में रहने वाले लोगों के लिए उच्च ज्वार के अलावा समुद्री तूफानों के आने और तबाही मचाने का अनुभव सदियों पुराना है। पालवाली नाव या पालवाले जहाज़ों की मदद से लम्बी समुद्री यात्राओं की शुरुआत के साथ किन अक्षांश पर यात्रा के अनुकूल हवाएँ किस समय मिलती हैं, कब विपरीत दिशा से चलने वाली हवाओं से पाला पड़ेगा – इन बातों का ज्ञान निरन्तर बढ़ता गया। भूगोल की किताबों में ऐसी हवाओं के नाम पछुआ हवाएँ, व्यापारिक पवनें, दहाड़ता चालीसा, चिंघाड़ता पचासा ... मिल जाएँगे। लेकिन हम यहाँ उन समुद्री तूफानों की बात कर रहे हैं जो तटीय इलाकों तक आकर तबाही मचाते हैं। तटीय तूफानों में भी अलग-अलग समुद्रों में उठने वाले तूफानों को टायफून, हरिकेन, टॉरनाडो ... जैसे विभिन्न नाम से पुकारा जाता रहा है।

तटीय इलाकों के तूफानों के नामकरण की बात की जाए तो विकिपीडिया के मुताबिक क्वींसलैंड सरकार (मौजूदा ऑस्ट्रेलिया में) के मौसम वैज्ञानिक क्लेमेंट लिंडले रैग (Clement Lindley wragge 1852-1922) वे व्यक्ति हैं जिन्होंने 1887 से 1907 के दौरान उस इलाके के तूफान एवं चक्रवातों को नाम देना शुरू किया। क्वींसलैंड के मौसम केन्द्रों पर काम करते हुए उन्होंने शुरू में ग्रीक वर्णमाला के अक्षरों से तूफानों के नाम रखे। बाद में, ग्रीक-रोम के पौराणिक किरदारों के नाम से तूफानों को पहचान दी। उन्होंने कुछ तूफानों के नाम महिलाओं के नाम पर और एक-दो मौकों पर राजनैतिक व्यक्तियों के नाम पर भी दिए। रैग ने बीच के कुछ समय मौसम पूर्वानुमान सम्बन्धी सप्ताहिक (रैग साप्ताहिकी) भी प्रकाशित किया जिसमें तूफानों के नाम का ज़िक्र मिलता है। रैग जब अपने पद से सेवानिवृत्त हुए तो तूफानों को नाम देने की यह परम्परा भी बन्द हो गई।

दोबारा तूफानों को नाम देने की शुरुआत 1953 में विश्व मौसम विज्ञान संगठन की पहल पर हुई जो शुरू में कुछ सागरों तक सीमित थी। वर्तमान समय में तीनों महासागर और अन्य प्रमुख सागरों में तूफानों को नाम देने की एक-जैसी प्रक्रिया अपनाई जाती है। भारत का सम्बन्ध उत्तरी हिन्द महासागर क्षेत्र से है जहाँ सन् 2004 से तूफानों को नाम देने की शुरुआत हुई है।

प्रस्तुत करें। नामों की सूची देते समय सभी देशों को इस बात का विशेष ध्यान रखना था कि तूफानों के नाम पढ़ने-बोलने में आसान हों, छोटे हों व राजनैतिक व्यक्तित्व, धार्मिक, जाति, सम्प्रदाय पर आधारित न हों। लैंगिक भेदभाव करने वाले, जन-समूह की भावनाओं को आहत या अपमानित करने वाले न हों।

2004 में भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, मालदीव, म्यांमार, ओमान, श्रीलंका, थाईलैंड – प्रत्येक देश ने

तूफानों के नाम के लिए प्रस्तावित आठ नामों की सूची दी। यानी तूफानों के लिए 64 नाम प्रस्तावित हो गए।

किसी भी खतरनाक तूफान के आने की स्थिति में बारी-बारी से सदस्य देशों के द्वारा प्रस्तावित नाम में से एक नाम का चुनाव किया जाता है। यह चुनाव पहले से तय होता है – देशों को अँग्रेज़ी वर्णमाला क्रम में रखा गया है और क्रमशः प्रत्येक देश द्वारा दी गई सूची में से अगला नाम ले लिया जाता है। और सभी सदस्य देशों को इसकी सूचना दी जाती है। साथ ही, तूफान की लोकेशन, बढ़ने की दिशा, अनुमानित गति, तट तक पहुँचने में लगने वाला समय, तट से टकराते समय की सम्भावित गति जैसे तमाम ब्यौरे सदस्य देशों के साथ साझा किए जाते हैं।

सन् 2004 में पैनल के सामने तूफानों के नाम की जो सूची रखी गई, उसे 2018 तक उपयोग किया गया। इसी साल यानी 2018 में पाँच नए सदस्य देश भी इस समूह में शामिल हुए। तो उन सभी देशों से भी 8-8 नाम सुझाने के लिए कहा गया। यहाँ हम बतौर उदाहरण सदस्य देशों के द्वारा पैनल को भेजे गए नाम साझा कर रहे हैं।

पहले कॉलम में वह सूची है जिनके नाम पर बीते वर्षों में तूफान आ चुके हैं। इस साल जून महीने में आए तूफान का नाम 'बिपरजॉय' था (देखिए कॉलम 2) जो बांग्लादेश

सदस्य देश	तूफान का नाम कॉलम 1	तूफान का नाम कॉलम 2	तूफान का नाम कॉलम 3	तूफान का नाम कॉलम 4
बांग्लादेश	निसर्ग	बिपरजॉय	अर्नाब	उपकुल
भारत	गति	तेज	मरासु	आग
ईरान	निवार	हमून	अकवन	सेपंड
मालदीव	बुरेवी	मिधिली	कानी	वनडे
म्यांमार	ताउके	मिचौंग	नगामन	क्याथिटि
ओमान	हां	रेमल	जलयात्रा	नसीम
पाकिस्तान	गुलाब	आसना	साहब	अफशां
कतर	शाहीन	दाना	लुलु	मौज
साऊदी अरब	जवाद	फेंगल	गज़ीर	मानो
श्रीलंका	असानी	शक्ति	गीगम	गगना
थाईलैंड	सितारंग	मोठ	थियानयोट	महीनो
यूएई	मैंडौस	सेन्यार	अफूर	नहाहाम
यमन	कहवा	दितर्वाय	दीक्षाम	सिरा

द्वारा प्रस्तावित था। अगले तूफान का नाम 'तेज' होगा जिसे भारत ने सुझाया है। इसके बाद ईरान द्वारा प्रस्तावित नाम 'हमून' होगा। इस तरह कॉलम 2 में अन्तिम देश यमन द्वारा प्रस्तावित नाम 'दितर्वाय' तक पहुँचने के बाद, कॉलम 3 के पहले नाम से शुरुआत होगी। जब सभी देशों द्वारा प्रस्तावित 8-8 नाम की सूची खत्म होने को हो तो नए नामों की सूची मंगवा ली जाती है।

शायद कुछ सवाल आपके मन में भी घुमड़ रहे होंगे। जैसे - क्या समुद्र या महासागर में बनने वाले हर चक्रवात को नाम दिया जाएगा या कुछ विशेष पैरामीटर के आधार पर यह तय किया जाता है? इसी तरह यह भी सवाल हो सकता है कि यदि कोई चक्रवात किसी समुद्र-विशेष में उठकर पास के दूसरे समुद्र में चला जाए जिसमें नामकरण किसी और आरएसएमसी (रीजनल स्पेशलाइज़्ड मेट्रोलॉजिकल सेंटर) द्वारा किया जाता हो, तब क्या होगा? ऐसे में क्या तूफान के दो नाम होंगे या एक ही नाम चलेगा?

पहले सवाल का जवाब है कि चक्रवात जिनमें हवा की गति 62 किलोमीटर प्रति घण्टा या इससे ज़्यादा हो, प्रवाह में निरन्तरता हो, उसे नाम देने लायक चक्रवात या तूफान माना जाता है।

किसी एक महासागर या समुद्र में नाम पा चुका तूफान जब किसी दूसरे समुद्र में प्रवेश करता है तो दो नियम लागू होते हैं। यदि एक समुद्र में बना तूफान अपनी तीव्रता गँवाए बगैर किसी दूसरे समुद्र में प्रवेश कर जाता है तो उसका नए सिरे से नामकरण नहीं होता, उसका पुराना नाम ही चलता है। लेकिन यदि ऐसा कोई तूफान कमज़ोर पड़कर किसी अन्य समुद्र में प्रवेश करे और फिर वहाँ एक बार फिर तीव्रता हासिल कर ले तो उसका नामकरण नए सिरे से किया जाता है।

माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

इस बार का सवाल: समुद्र में चक्रवात क्यों बनते हैं?

– होशंगाबाद, म.प्र.

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

रंगून क्रीपर तथा कल, आज और कल के रंग बदलते फूल

किशोर पंवार

किसी मकान या बगीचे के पेड़ पर गलबहियाँ करती *क्विसकालिस इंडिका* की बेल जिसका लेटिन में अर्थ होता है 'कौन-क्या' झाड़ी, शायद आपने कई बार देखी होगी। पर अब इस बेल के झुमके की तरह लटकते फूलों को गौर से देखें। कुदरत के क्रियाकलापों का ये अद्‌भुत नज़ारा है। यह महकती हुई रंगीन बेल प्राकृतिक रूप से हमारे देश के अलावा पाकिस्तान, मलेशिया और म्यांमार (रंगून-बर्मा) के जंगलों में पेड़ों पर चढ़ी मिलती है। परन्तु इसकी सुन्दरता के चलते यह रंगून क्रीपर बाग-बगीचों और घरों की एक पसन्दीदा बेल बन चुकी है। हमारे देश में इसे संध्यारानी, माधवीलता, मधुमंजरी और मधुमालती जैसे नामों से भी पुकारा जाता है। इस सुन्दर रसभरी लता पर लिखते समय मुझे यह गाना भी बार-बार याद आ रहा है,

मेरे पिया गए रंगून,
वहाँ से किया है टेलीफोन,
तुम्हारी याद सताती है।

शाम का नज़ारा

शाम ढलने को है, धीरे-धीरे अँधेरा फैलता जा रहा है, दबे पाँव। सूरज के स्वागत में खिले सभी फूल अपने खिड़की-दरवाज़े बन्द कर सोने की तैयारी में हैं – चाहे ऑफिस टाइम पौधा हो, जरबेरा, गुलबांस या गुड़हल।

पर मेरे घर पर दूसरी मंज़िल तक चढ़ी एक बेल पर सफेद-लाल फूलों वाले बड़े-बड़े गुच्छे हवा में होले-होले झूल रहे हैं – गहरे हरे चमकीले अण्डाकार पत्तों के बीच, जिनकी नसें भी दूर से ही नज़र आ जाती हैं। फूलों के ये गुच्छे रस और सुगन्ध से भरपूर हैं। कहते हैं कि इनकी गन्ध जौली रेंजर कैंडी (एक प्रकार की टॉफी) की याद दिलाती है।

प्रत्येक गुच्छे में लगभग 15 से 20 फूल लगे रहते हैं। इनमें से चार-पाँच फूल रोज़ शाम को ताज़ा खिलते हैं। ये फूल बहुत लम्बे होते हैं – छह से आठ सेंटीमीटर लम्बे। इनकी लम्बी पतली-सी हरी नली के ऊपर पाँच पंखुड़ियाँ लगी हुई हैं। और इस नली में ऊपर से नीचे तक ढेर सारा मकरन्द भरा हुआ है जिसकी तलाश में तरह-तरह के मेहमान इनके इर्द-गिर्द मण्डराते रहते हैं। सुबह-शाम इनका डेरा लगा रहता है, इन फूलों पर।

शाम को सफेद ताज़े फूलों पर लम्बी सूण्ड वाले पतंगे आ पहुँचते हैं। लगता है जैसे इनकी 10 से 12 सेंटीमीटर लम्बी सूण्ड फूलों की नली की लम्बाई से प्रतिस्पर्धा कर रही हो। ये पतंगे स्ट्रॉ जैसी अपनी सुण्डी नली में डालकर उनमें भरा मीठा मकरन्द उड़ते-उड़ते ही पीते रहते हैं।

सुबह का आलम

अब रात ढल चुकी है और सुबह होने को है। जो फूल रात के समय सफेद थे, वे अब सूरज की रोशनी में अपना रंग बदलने लगे हैं। देखते-देखते ही ये फूल गुलाबी और शाम होते-होते लाल हो जाते हैं। अब इनके मेहमान भी बदल जाते हैं। दिन में रंगीन तितलियाँ और शक्करखोरे इनका रस पीने के लिए आ पहुँचते हैं। तीसरा दिन होते-होते ये फूल सफेद और लाल से गहरे मरून रंग के हो जाते हैं। पतंगे हों या तितलियाँ या फिर शक्करखोरे, मीठा मधु पीने के साथ-साथ इनका पराग भी इधर-से-उधर करते रहते हैं जिससे इन बेलों पर परागण की वजह से फल बनते हैं। मधुमालती के ये फूल न सिर्फ अपना रंग बदलते हैं बल्कि समय के साथ इनकी स्थिति भी बदलती है। पहले दिन, क्षितिज में उग रहे चन्द्रमा को निहारते उसी की तरह सफेद, और दूसरे दिन नीचे ज़मीन की ओर हल्के झुके, अपनी जड़ों को धन्यवाद देते जो इन्हें पानी पिलाती रहती हैं।

फूलों का यह रंग-रूप और स्थिति में परिवर्तन, इसके परागकणों को बिखराने वाले तरह-तरह के कीट-पतंगों और पक्षियों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए होता है, ऐसा कई जानकार कहते हैं। कुछ भी हो, यह रंगबाज़ फूल कैसे भी हों, किसी-न-किसी तरह अपना परागण करवा ही लेते हैं। चाँदनी रात हो या दिन का उजाला, इन फूलों के गुच्छे लगते

बड़े सुन्दर और सजीले हैं। इस बेल का रंगीन जादू एक बार देख लेने के बाद आपको भी बार-बार इसकी याद ज़रूर आएगी।

एक और अचम्भा - टुडे टुमॉरो टुगेदर

रंगून क्रीपर की रंगीनियाँ देखने के बाद, आइए, अब एक और रंगबाज़ फूल की बात कर लें। इसे भी विभिन्न नामों से जाना जाता है - टुडे टुमॉरो टुगेदर, मॉर्निंग नून एण्ड नाइट, किस मी क्विक और ब्राज़ील रेनट्री। इसके इतने सारे नाम से यह तो पता चल ही जाता है कि यह कोई खास किस्म का ही पौधा होगा। दरअसल, यह एक सुन्दर झाड़ी है जो मुख्य रूप से ब्राज़ील में पाई जाती है। वनस्पति-शास्त्री इसे *ब्रुनफेल्सिया पासीफ्लोरा* के नाम से जानते हैं। इसका नाम सोलहवीं सदी के जर्मन सन्त ओटोब्रुन फाइल्स की याद में रखा गया है। इसका प्रजातिगत नाम 'पासीफ्लोरा' एक लैटिन शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ होता है 'कुछ ही फूलों वाली'। यह झाड़ी लगभग ढाई मीटर तक ऊँची और डेढ़ मीटर तक चौड़ी होती है। इसमें लगभग 16 सेंटीमीटर लम्बी गहरी हरी पत्तियाँ समूहों में लगी रहती हैं।

फूल भी समूह में खिलते हैं, एक समूह में लगभग दस तक। प्रत्येक फूल लगभग पाँच सेंटीमीटर लम्बा होता है जो खिलते समय बैंगनी रंग का होता है और जिसका केन्द्रीय भाग सफेद रंग की एक सुन्दर रचना से बना होता है। दूसरे दिन यह हल्के बैंगनी रंग में बदल जाता है और फिर तीसरे दिन सफेद हो जाता है। फूलों के ये तीनों रूप एकसाथ देखे जा सकते हैं। फूलों की पंखुड़ियाँ 11 से 25 मि.मी. लम्बी होती हैं।

फूलों में प्रतिदिन होने वाले रंग परिवर्तन के बारे में जानकर अब तो आप समझ ही गए होंगे कि इसे 'टुडे टुमॉरो टुगेदर' या 'मॉर्निंग नून एण्ड नाइट' नाम क्यों दिए गए हैं! दरअसल, फूलों की स्थितियाँ दर्शाती हैं कि कौन-सा फूल कब खिला है। सफेद फूल परसों से खिला हुआ है, हल्का बैंगनी कल का है और आज का ताज़ा फूल गहरे बैंगनी रंग का है। ये फूल प्रतिदिन रंग बदलते हैं जिन्हें देखकर हम यह पता लगा सकते हैं कि कौन-से फूल की उम्र कितनी है। है न मज़ेदार इन फूलों का मिज़ाज!

किशोर पंवार: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में बीज तकनीकी विभाग के विभागाध्यक्ष और वनस्पतिशास्त्र के प्राध्यापक रहने के बाद सेवानिवृत्त। 'होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम' से लम्बा जुड़ाव रहा है जिसके तहत *बाल वैज्ञानिक* के अध्यायों का लेखन और प्रशिक्षण देने का कार्य किया है। *एकलव्य* द्वारा जीवों के क्रियाकलापों पर आपकी तीन किताबें प्रकाशित। शौकिया फोटोग्राफर, लोक भाषा में विज्ञान लेखन व विज्ञान शिक्षण में रुचि।

(a) मधुमालती के खिलते पुष्पक्रम में फूलों का रंग गुलाबी से लाल होते हुए।
(b) एक पतंगा रात में सफेद फूलों पर मण्डराता हुआ।
(c) तितली दिन में गुलाबी और लाल फूलों का भ्रमण करती है।
(d) मधुमक्खी गुलाबी फूलों पर मण्डराती हुई।

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, टुलटुल बिस्वास द्वारा निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन की ओर से, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) से प्रकाशित तथा भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।